प्राक्-कथन

धवल ग्रंथके सूत्र ९३ वे में संजद शब्द नहीं चाहिये इस विषय पर द्रव्य पक्षी अनेक विद्वानोंने अपने लेख तथा ट्रैक्टों द्वारा प्रकाश डाला है। भाव पक्षी विद्वानों के भी इसके विरोधमें अनेक लेखादि प्रसिद्ध हो चुके हैं। किन्तु अंतिम निर्णय के अधिकारी परम पूज्य चारित्र चक्रवर्ती श्री १०८ आचार्य शांतिसागर जी महाराज होनेसे अभी तक यह विषय विवाद में पड़ा है, जिसका कि निर्णय होना अत्यंत आवश्यक है। प्रस्तुत ट्रैक्ट मे एक तो स्व० पं० रामप्रसादजी शास्त्री ने जो इस संबन्ध में अपने कुछ नोट लिखकर रक्खे थे उनका संग्रह है। उनका विचार इसको पूर्ण करके ट्रैक्ट रूपमे प्रकाशित करनेका था। किंतु खेद है कि असमयमे ही उनका स्वर्गवास हो जानेसे वे इसको पूर्ण नहीं कर सके। अतः श्री ऐलक पन्नालाल दि० जैन सरस्वती भवनमे जो भी पत्र उनके हाथके लिखे हुए हमे मिले उसको ही प्रकाशित करना हमने उचित समझ इस ट्रैक्टके साथ प्रकाशित किये हैं दूसरा ट्रैक्ट इसके साथ पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक सूरिसिंहजी महाराज का है। उन्होंने जो विचार इस संबध मे प्रगट किये हैं वे पाठकों के

समक्ष प्रस्तुत हैं। पाठकगण शांतिके साथ उन पर विचार करेंगे तथा इस विषयका अंतिम निर्णय जो कि परम पूज्य चारित्र चक्रवर्ती श्री १०८ आचार्य शांतिसागरजी महाराज द्वारा होने वाला है, उसकी प्रतिक्षा करेंगे। हमारे साधारण संकेत पर यह ट्रैक्ट श्रीमान् राज्यभूषण सेठ मगनमलजी सा० व रा० ब० राज्यभूषण सेठ हीरालालजी सा० पाटनी किशनगढ़ निवासीने अपनी ओरसे प्रकाशित करने की स्वीकारता दी, इसके लिए उन्हें कोटिशः धन्यवाद है धार्मिक कार्योंको करनेमे आप हमेशह कटिबद्ध रहते हैं। श्री चन्द्रप्रभ दिगम्बर जैन मंदिर भुलेश्वर बम्बई मे आपने कितनी ही बार अपने द्रव्यका सदुपयोग किया है। दिगंबर जैन धर्मायतनोंकी रक्षाकी आपकी हमेशा प्रबल भावना रहती है मारोठ किशनगढ़ आदि स्थानोमे जो अनेक संस्थाओ द्वारा धर्म प्रभावना हो रही है, वह सब आपके ही सद् प्रयत्नका फल है आपके द्वारा हमेशा इस प्रकारके धर्म कार्य होते रहे ऐसी हमारी पवित्र भावना है।

निरंजनलाल जैन

आद्य वक्तव्य !

यह संजदादर्श नामका छोटासा ग्रंथ वाचक वर्गके सामने रख रहा हूँ। इस ग्रंथोत्पत्तिका कारण विज्ञ वाचकवृन्द जानलिया है कि, निर्मल जिनवाणीको जो लगा हुआ मल है उसका निराकरण करके श्री षट्खण्डागमको निर्मल रखना आणि श्री दिगम्बर जैनधर्मका परंपरागत आया हुआ जो आम्नाय उसकी रक्षा करना यह परम पवित्र उद्देश्य है। हमारे समाजमें सन्यकालमें विज्ञ पडित वर्गमें जो मतभेद है। वह मतभेद सिद्धांत ग्रथोंमें भी आने लगा है। विद्वान् समाज यह जानते है कि, सिद्धांत रहस्यका अध्ययन, वीरचर्या, दिनप्रतिमायोग तथा प्रायश्चितका विषय श्रावक लोगोंको पढ़नेका अधिकार नहीं है। इसप्रकार श्री समन्तभद्रादि आचार्योंने तथा और भी ग्रथकारोंने लिखित प्रमाण दिया है तो भी श्री षट्खण्डागम रहस्योद्घाटन नामका ग्रथ श्री पं० सोनीजी ने लिखा है। सिद्धान्त ग्रथका रहस्यका प्रकाशन प० लोगोंको (श्रावकोको) करनेका अधिकार नहीं है। तो भी आचार्य बचनो का अवहेलन करके सिद्धान्तका रहस्य प्रगट करनेका प्रयास किया है। तो भी प० सोनीजी सिद्धान्तका रहस्य समझे नहीं बिना समझे क्या रहस्यको प्रगट कर सकते हैं ? नहीं ! नहीं !!

खुद प० सोनीजी सिद्धान्तको उलटा ही समझा है और विपरीत सिद्धांतका कथन करते गय है यह मैने इस संजदादर्श नामक पुस्तकमें दिखाया है। प० सोनीजी श्री षट्खिडैं ग्रथ

ग्रन्थ सब भावका ही कथन करने वाला है ऐसा लिखा है । खैर ! पं० जी के कथनानुसार विचार करते हैं कि, केवल भावमें आठ अनुयोग कैसे सिद्ध होंगे ? कभी भी नहीं ? क्योंकि सत्, संख्या क्षेत्र, स्पर्श, काल, अंतर, भाव, अल्प बहु ये आठ अनुयोग द्रव्य, क्षेत्र, काल, और भाव इसके सामान्य और विशेष की अपेक्षासे आठ अनुयोग होते हैं । यह आबाल गोपालको भी मालुम है तो भी, हमारे पं० सोनीजी ने जानबूझ कर ही उस बातको उड़ाया है । लेकिन वाचकवर्ग तो सब जानते हैं कि, पं० जी ने कैसी भूल खाई है । तथा श्री वीरसेनाचार्यने ग्रंथारंभमें जो प्रतिज्ञा किया है उसको तो भूलगये हैं । खुदही भूलनेवाला भूलै या औरोंका क्या राह दिखावेगा ? उसी तरह पं० जी स्वयं सिद्धात का रहस्य ही समझा नहीं तो दूसरोंको क्या रहस्य प्रगट करके दिखा सकेंगे ?

इस ग्रंथमें मैने पर्याप्ति पुद्गल विपाकी किस तरह है । पर्याप्ति जीव विपाकी कब और पुद्गल विपाकी कब किस तरहसे होते हैं यह अच्छी तरह दिखाया है । गति, इन्द्रिय, काय, योग, वेद, लेश्या, आहार इत्यादि मार्गणायें द्रव्यात्मक तथा भावात्मक किस तरह है । इनका स्वरूप अच्छी तरहसे दिखाया है । वाचक वर्ग उसका अति सूक्ष्म रीतिसे अवलोकन करें ।

वेद सर्वथा भावात्मक अर्थ करते हैं वह भूल है एक शब्दका अर्थ सर्वथा एक करना भूल है । मिथ्यात्व दोष आता है प्रकरणके अनुसार अनेक अर्थ करना अनेकांतियोंको इष्ट है ।

उसे कदापि नहीं भूलना चाहिये। द्रव्यवेद परिवर्तन शील नहीं भाववेद परिवर्तन शील है। भावका बोध ही परिवर्तन होता है। इसलिये भाववेदको अपरिवर्तन मानना ठीक नहीं है। वे प्रकरण प्रमाण देकर जनताको उलटा समझानेका प्रयत्न करना महापाप है। जैसे कि भावानुयोगका प्रकरण लेकर द्रव्यानुयोगमें घटित करनेका या सारा ग्रंथ भर भावका ही प्रकरण मानना यह विपरीत पणा है प० सोनीजी सूत्र न० ९३ मे आया हुआ मानुषी को भावमानुषी (द्रव्यपुरुष भावसे स्त्री) माना है यह उनके ही माने हुये सिद्धांतके विरुद्ध वचन है। जैसे कि, इस श्री षट्खण्डागम ग्रंथमें द्रव्यका कथन नहीं। फिर वेद वैषम्य कैसा संभवता है। यह विचित्रपणा पंडितजीके समझमें कैसे नहीं आया!

अफसोस! जो सब ग्रंथको भावात्मक मानता है उसको वेद वैषम्यताकी (द्रव्य पुरुष भावसे स्त्री) सूझ किस तरह आया! द्रव्य शरीर माने बिना वेद वैषम्य मानना युक्तियुक्त नहीं है।

बिना द्रव्यशरीरके वेद वैषम्य मानना बच्चेवाली बात है।

मानुषी शब्दका अर्थ भी द्रव्यस्त्री तथा भावस्त्री होता है प्रकरणके अनुसार अर्थ करना उचित है। उसी तरह सू० न० ९३ में आया हुआ मणुसिणी शब्द पर्याप्ति अपर्याप्ति विशेषण युक्त है। वह वहाके प्रकरणके अनुसार द्रव्यस्त्री करना इष्ट है। तथा और जगहमें भी मणुसिणी शब्दका अर्थ द्रव्यस्त्री करना प्रकरण अनुसार इष्ट ही है। अनिष्ट नहीं यह मैंने संजदादर्श में दिखाया है।

अपर्याप्तावस्थामें भाववेद तथा द्रव्यवेदकी समानता रहती है। यह सिद्धांत मान्य है यह भी अच्छी तरह दिखाया है। लिंग और अंगोपांगमें भेद किस तरह से है यह दिखाया है। उसके बिना द्रव्यलिंग भावलिंग की व्यवस्था नहीं बैठ सकती है।

अंतमें यह निवेदन है कि, दिगम्बर आम्नायके अनुसार सिद्धांतकी रक्षा करना हो तो सू० नं० ९३ में जो संजद शब्द अंकित ताम्रपत्रमें किया है उसको निकालना बहुत जरूरी है। यदि किसी कारणवशात् नहीं निकाले तो दि० आम्नायको बड़ा धोका होता है। उसके अनादिताका घात होता है। यह मैने सारा प्रयत्न दि० आम्नायकी तथा सिद्धांतकी रक्षाका पवित्र उद्देश्य रखकर ही किया है। विचारशील वाचकवर्ग मेरे प्रयत्नको सफल बनावेंगे तो मैं कृतार्थ हो सकूंगा। और मेरा प्रयत्न भी तब ही सफल होता है जब सूत्र नं० ९३ में से संजद शब्द हटेगा।

इसलिये मैं मेरे प्रतिपक्षी विद्वानोंको भी निवेदन करूंगा कि सूत्र नं० ९३ में से संजद शब्दको हटाकर अपना परम पवित्र दि० जैनधर्मका सिद्धांताम्नाय अक्षुण्ण रक्खें।

मैं इस ग्रंथमें कुछ विषयांतर किया हो, या कटु वचनका प्रयोग किया हो या कहीं विषय प्रतिपादनमें स्खलित हुआ हो, तो मेरे भूल को ग्रहण न करके हंस क्षीर न्यायसे गुण को ही ग्रहण करो।

गच्छतः स्खलनं क्वापि भवेत्येवप्रमादतः।
हसंति दुर्जनास्तत्र समादधति सज्जनाः॥

आ० हि० सूरिसिंह महाराज

धवल टीकाकार की

—: प्रतिज्ञा :—

श्री षट् खंडागम में जितना कथन है, जीव के भाव की अपेक्षा से है। उसमें द्रव्य की अपेक्षा नहीं है। अब इस कथन पर हम विचार करते हैं।

जो भाव है वह द्रव्य को छोड़कर स्वतंत्र है या नहीं? तथा वह भाव भी क्या द्रव्य के अतर्भूत है या नहीं? इस प्रकार दोनों द्रव्य और भावो का विचार करते हैं।

यद्यपि जीवके भाव है। वे जीव द्रव्यके अवलंबनको छोड़कर स्वतत्र कोई भाव नहीं है वे भाव द्रव्यके अवलंवन भूत ही हैं। इन भावोंका वर्णन आचार्योंने स्वतंत्र करके नहीं किया है। तथा भावोको छोड़कर द्रव्य भी नहीं है। द्रव्य और भाव इनका तादात्म्य सबधसे ही कथन किया है। अब इन जीवके भावमें भी विकारी भाव और निर्विकारी भाव होते हैं। जबतक पौद्गलिक कर्मवर्गणाका संबध है। तब तक वह विकारी है। विकार भी भिन्न विरुद्ध दो द्रव्य का संयोग से ही माना है। यहाँ पर मैं कर्म

का और आत्मा का संयोग संबंधसे ही प्रतिपादन कर रहा हू इस संयोग संबंध की मीमांसा नहीं कर रहा हूं। सिर्फ प्रकृत विषयको लेकर ही कथन कर रहा हू।

द्रव्य कर्मके निमित्तसे भावकर्म होते हैं। द्रव्य कर्मवर्गणाके निमित्तसे ही औदयिक भाव होते हैं द्रव्य कर्मवर्गणाके उदयके विना औदयिक भाव नहीं होता इसको पं० जी भी मानते हैं। औदयिक भाव केवल शुद्ध आत्माके भी नहीं है। तथा शुद्ध पुद्गल द्रव्यके भी नही है। जीव और पुद्गल संयोगित अशुद्ध जीव द्रव्य का भाव ही औदयिक भाव है। इस औदयिक भाव का वर्णन हमारे आचार्य प्रवरोंने निक्षेप और नयोंकी अपेक्षासे किया है। श्री षट्खंडागम की विस्तृत टीका श्रीमद्भगवद्वीरसेनाचार्यने लिखी है। वे आचार्य प्रथम प्रतिज्ञा भी किये है। उस प्रतिज्ञा वाक्योंको भी देखना जरूरी है। क्योंकि, उस प्रतिज्ञा वचनोंके अनुसार ही उन वचनो का भाव या उनका अर्थ निकालना चाहिये। तब ही उसका अर्थ यथार्थ समझमें आता है। इसलिये उन वचनों की अवहेलना नहीं की जानी चाहिये। अब उनका (प्रतिज्ञा वचनो का) उद्धरण करता हू। सो देखिये और उनका अर्थ या भाव कैसा है सो देखकर ही उनका तात्पर्य निकाल कर चर्चा करना चाहिये। "तत्थ णेगम संगह ववहार णएसु सव्वे एदे णिक्खेवा हवंति तव्वि- सयम्मि तब्भव सारिच्छ सामण्णम्हि सव्वणिक्खेव संभवादो।

कथ दव्वट्ठियणाये भावणिक्खेवस्स संभवो ? ण, वट्टमाण पज्जायो वलक्खियं दव्वं भावो इदिदव्वट्ठियणयस्य वट्टमाणमवि आरम्भप्पहुडि आ उवरमादो । संगहे सुद्ध दव्वट्ठिए वि भावणिक्खेवस्स अत्थित्तं ण विरुज्झदे । सकुक्खिणिक्खित्तासेस विसेस सत्ताए सव्व काल मवट्ठिदाए भावब्भत्र गमादोत्ति ।" मंत परुत्रणा पे० नं० १४।१५

अर्थ—उन सात नयोंमेंसे नैगम, संग्रह और व्यवहार इन तीन नयोंमें नाम, स्थापना आदि सभी निक्षेप होते है । क्योंकि, इन नयोंके विषयभूत तद्भव सामान्य और सादृश्य सामान्यमें सभी निक्षेप संभव हैं ।

शंका—द्रव्यार्थिक नयमे भावनिक्षेय कैसे संभव है ? अर्थात् जिस पदार्थमे भावनिक्षेप होता है वह तो उस पदार्थ की वर्तमान पर्याय है, परन्तु द्रव्यार्थिक नय सामान्यको विषय करता है, पर्याय को नहीं, इसलिये द्रव्यार्थिक नयके विषयभूत पदार्थोंमें, जिस प्रकार दूसरे निक्षेप घटित हो जाते है, उस प्रकार भावनिक्षेप घटित नहीं हो सकता है । भावनिक्षेपका अंतर्भाव तो पर्यायार्थिक नयमें संभव है ।

समाधान—ऐसा नहीं है । क्योंकि वर्तमान पर्याय से युक्त द्रव्य को ही भाव कहते हैं । और वह वर्तमान पर्याय भी द्रव्यकी आरम्भसे लेकर अनंत तक की पर्यायोमें आही जाती है । तथा द्रव्य, अर्थात् सामान्य द्रव्यार्थिक नयका विषय है । जिसमे द्रव्य की त्रिकालवर्ती पर्याय अंतर्निहित हैं । अतएव द्रव्यार्थिक नयमें

भावनिक्षेप भी बन जाता है। यहां पर पर्याय की गौणता और द्रव्य की मुख्यतासे भाव निक्षेप का द्रव्यार्थिक नयमें अंतर्भाव समझना चाहिये।

इसी प्रकार शुद्ध द्रव्यार्थिक नयरूप संग्रह नयमें भी भाव निक्षेप का सद्भाव विरोध को प्राप्त नहीं होता है। क्योंकि, अपनी कुक्षीमें समस्त विशेष सत्ताओं को समाविष्ट करने वाली और सदा काल एकरूपसे अवस्थित रहने वाली महासत्तामें ही 'भाव' अर्थात् पर्याय का सद्भाव माना गया है।

अभेद रूपसे वस्तु को जब भी ग्रहण किया जायगा, तब ही वह वर्तमान पर्यायसे युक्त होगी ही। इसलिये वर्तमान पर्याय का अन्तर्भाव महासत्तामे हो जाता है। और शुद्ध संग्रह नय का महासत्ता विषय है। अतएव संग्रह नयमे भी भावनिक्षेपका का अतर्भाव हो जाता है। यहा पर पर्याय की गौणता और द्रव्य की मुख्यता समझना चाहिये। अब एक बात का खुलासा करते हैं कि, भाव निक्षेप को आचार्यो ने द्रव्य निक्षेप निरपेक्ष नहीं माना है। तब प० सोनीजी जिस भाव की प्रधानतासे षट् खडागममें सब कथन मान रहे है वह भाव, द्रव्यसे भिन्न मानते है या अभिन्न? भिन्नमे भी तद्भवभिन्न या तद्भावभिन्न? तद्भवभिन्न मे भी तच्छादृशभिन्न या तदसादृश भिन्न? इन सब विकल्पो का विचार कर कर देखेंगे तो भी द्रव्य को छोड़कर दूसरा कोई भाव पदार्थ भिन्न रूप का नहीं मिलेगा। तथा वह भाव भी शुद्ध द्रव्य का या

अशुद्ध द्रव्य का ऐसा प्रश्न होने पर अशुद्ध द्रव्य का ही मानना पड़ता है, क्योकि मार्गणा अशुद्ध द्रव्यके औदयिक भाव ही मानी है। वह अशुद्ध औदयिक भाव अशुद्ध द्रव्यकाही है। इस लिये कर्म संयोगित द्रव्य का कथन ही प० जी को मानना पड़ेगा। इस अशुद्ध द्रव्योद्भव अशुद्ध भाव कर्म जनित ही होते है। संसारी जीवोके औदयिक भाव कर्म प्रधानतासे भी होते हैं, न कि कर्म निरपेक्ष शुद्ध ? इसलिये कर्मोदय कर्म संबधोके बिना भी नहीं होते है। इस प्रकार विचार करने पर ग्रंथकार की प्रतिज्ञा केवल द्रव्य निरपेक्ष भाव का कथन करने की नहीं है। कर्म सापेक्ष अशुद्ध भावों को लेकर परमशुद्ध क्षायिक भावोंके वर्णन करने का है। मार्गणा औदयिक भाव है। इसलिये कर्मोदयमें घाति कर्मोदय जन्य मार्गणा और अघाति कर्मोदय मार्गना दो तरह की मार्गणा है। उनमें अघाति कर्मोदय मार्गणा शरीराश्रित भी है। शरीर नामक कर्मोदय रूप है जितनी मार्गणायें हैं वे पुद्गल का संबंध रखने वाली है। जैसे गतिनामकर्म, शरीर नामकर्म, (कायमार्गणा) इद्रिय नामकर्म पर्याप्त नाम कर्म ये सब पुद्गल विपाकी कर्म स्कन्धों की अपेक्षा रखने वाले है।

यद्यपि पर्याप्ति को जीवविपाकी कहा है। वह गोमट्टसारने प्राण और पर्याप्ति को कार्य कारण भाव संबंध मान करके कहा है। लेकिन श्री धवला कारने श्री धवला टीकामें उस प्राण और पर्या-

तियों को कार्य कारण भाव संबंध नहीं माना है । यहां पर धवला-जीमें प्राण और पर्याप्तियोंके हिम विंध्याचलके समान भिन्न मान-कर पर्याप्ति को पुद्गलविपाकी सिद्ध किया है उन विषयों को प० सोनीजी जान बूझकर ही छोड़ दिये और अपनी पक्षता की पुष्टि के लिये ग्रथांतरके शरणमें गये हैं इस तरह ग्रथांतरके शरण जाने का हेतु क्या है ? जबकि सूत्र ३४ श्री धवला टीकामें अच्छी तरह से विस्तार पूर्वक पुद्गल विपाकी कार्य पर्याप्तियों का कथन होने पर भी उसको छोड़कर मूलोचार की वृत्तिके कारण पर्याप्तिके शरणमें क्यों ? यह एक विशेष बात अपने पक्ष की पुष्टताके लिये ही सिद्ध करते हैं । अपने पुस्तक का नाम रखा है श्री षट् खंडागम रहस्योद्घाटन और मुख्य सीधे सरल विषय को छोड़कर मूलाचार की टीका का आश्रय क्यों ? क्या धवलाजीमें इसका खुलासा नहीं था ? था, फिर प्रथातर की शरण क्यो ? अपने सिद्धान्त का रहस्य न दिखाकर अपनी पक्ष पुष्टि की है । यह सत्य है ।

अब दूसरी बात यह है कि, द्रव्यानुयोग सख्यानुयोग क्षेत्रा-नुयोग स्पर्शनानुयोग, कालानुयोग, अतरानुयोग, भावानुयोग, अल्प-बहुत्वानुयोग ऐसे आठ अनुयोग सब ही भावात्मक ही है, यदि भावात्मक है तो फिर भावानुयोग का कथन क्यों ? यह दुवारा कथन नहीं होता । तथा क्षेत्र स्पर्श, काल अंतर, ये सब भावरूप ही है । इसका खुलासा करना पंडितों का कार्य है । क्योंकि मुझे द्रव्य क्षेत्र काल भाव की सामान्य और विशेष दो दो भेद की अपेक्षा

से आठ अनुयोग दिखते हैं। शायद पं० जी के मतसे मेरी दृष्टिमें दोष हो तो पं० जी अपनी ज्ञान सामर्थ्य से दिखावेंगे।

श्री षट्खंडागमके छह खंडोमें प्रथमखंड जीवस्थान है इनमें आठ अनुयोगके द्वारा कथन किया है। इसी आठ अनुयोगोंमें जीवोके गुणस्थानो का कथन भी आठ अनुयोगोंसे ही कथन किया है मणुसिणीके विषयमें भी वेदवैषम्यता का कथन भी जब तक द्रव्यमणुसिणीके पाच गुणस्थानों का प्रमाण नहीं मिलता तब तक वेदवैषम्यता की सिद्धि भी नहीं होती। यदि द्रव्यस्त्रियों का कथन ही सत्प्ररूपणामें द्रव्यस्त्रीके गुणस्थान का सत्व नहीं माना जाय तो आगे संख्यादिकोंके विषयमें भी कैसा आवेगा ? यह खास बात है। तथा संख्या प्ररुपणामें मिथ्यादृष्टि मणुसिणी की संख्या जो बताई है, वह द्रव्यस्त्री की है। इसलिये सूत्र न० ४८ में मणु-सिणी पद आया है। तथा उन मणुसिणी अनुवृत्ति आने पर भी ४९ वें सूत्रमें भी मणुसिणी पद क्यों आया ? इसलिये कि सूत्र न० ४८ में द्रव्यस्त्री और आगे भावस्त्री इस प्रकार समझना चाहिये यह सत्य है। जब तक द्रव्यस्त्रीके पांच गुणस्थान का कथन नहीं आवेगा तब तक वेद वैषम्यताके मान्यतामें कोई भी सबूत प्रमाणपणासे वेद वैषम्य की सिद्धि नहीं होती है। द्रव्य-स्त्रीके पांच गुणस्थानों का नियामक सूत्र नहीं मिलेगा तो वेद-वैषम्यता की बात की सिद्धि भी नहीं होती। ऐसी अवस्थामें वेद-वैषम्य मानना निराधार है। इसलिये वेद वैषम्यता की मान्यता

षट्खंडागमकार की नहीं है ऐसा मानने पर कौनसी आपत्ति किस सूत्रसे आती है ? तथा परम्परा गुरु आम्नाय की मान्यता भी किस तरहसे सिद्ध हो सकती है ? इन प्रश्नो का जवाब ढूंढने को कोई भी स्थान नहीं है। रही ग्रंथांतर की बात सो भी अर्वाचीन ग्रंथोमे प्राचीन ग्रंथोमे मान्यता नहीं बैठ सकती है हां प्राचीन की व्यवस्था अर्वाचीन ग्रथोंमें बैठ सकती है। लेकिन श्री षट्खंडागमके पूर्व-वर्ती और दूसरा ग्रथ ही नहीं है ऐसा भी एक मतसे चिल्ला रहे हैं। तथा श्री षट्खडागममें द्रव्य वेद का तथा द्रव्य शरीर का कथन भी प० सोनीजी नहीं मानते है। तो वेद वैषम्यता की सिद्धि भी क्या जरूरी है ? जब तीनो वेद संजमके या क्षपक श्रेणी चढ़नेमें बाधक नहीं है, तो शरीर भी बाधक किस तरहसे हो सकता है। क्योंकि शरीर तो अघाति कर्म है, वह गुणो का घातक नहीं हो सकता। इसलिये सीधे प० सोनीजीके मान्यतासे वेद वैषम्य भी फल्गुप्राय रहा। क्योकि वेद चारित्र मोहनीय घाति-कर्म का भेद है। तथा शरीर नामकर्मरूप अघातिकर्म का भेद है। इन दोनोंमें निमित्तयोग भी नहीं है। दोनो कारण भिन्न भिन्न है। दोनोके कार्य भी भिन्न हैं। ऐसी अवस्थामें समवेद या विषम वेद चाहे सो हो। वह वेद सजम का तथा क्षपक श्रेणी आरोहन का बाधक नहीं है। इसलिये जब तक वेद और शरीर का सहयोग संबध की शक्ति नहीं मानेगे तब तक वेद वैषम्य या वेदसाम्य मान कर क्या लाभ होगा ? सो इस प्रन पर विद्वान् समाज विचार करना। और द्रव्यस्त्री मुक्तिके विरोधमें कौनसा कर्म कार्य प्रति-बधक है सो इनका खुलासा करना।

❀ इति प्रथम प्रकरण समाप्त ❀

प्रकरण २

पर्याप्तावस्था और अपर्याप्तावस्था

श्री षट्खंडागम में पर्याप्त अपर्याप्त विशेषण जीवों को लगाया है इस विशेषण से हमारे समाज में विवाद खड़ा हुआ है सूत्र नं० ९२। ९३ वे मे पर्याप्त और अपर्याप्त विशेषण माणुसी के लगा हे वह विशेषण भावात्मक रूप से जीव के है और शरीर संबंध युक्त जीवको शरीर की मुख्यता से है या शरीर संबंध रहित जीवको भावकी अपेक्षा से लगाया है। इस विषय को अच्छी तरह से देखना और जानना जरूरी है। पं० सोनीजीने अपने "षट्खंडागम रहस्योद्घाटन" नामक ट्रैक्ट में सभी पर्याप्ति अपर्याप्ति या तथा १४ मार्गणाये आदि जितना कथन है, वे सब विषय जीवोंके भाव विशेषसे लिखा है। द्रव्य शरीरादिकका कोई सबध मुख्यतासे वर्णन नही है ऐसा लिखकर शरीरकी मुख्यता से कथन षट्खडागम म नहीं है ऐसा सिद्ध करनेका प्रयत्न बहुत जोर से किया है। लेकिन वह उनका प्रयत्न सफल नहीं हुआ है। यही मै अपने छोटेसे लेखसे दिग्दर्शन कर रहा हूँ।

प्र०—पर्याप्ति अपर्याप्ति क्या है ?

उ०—पर्याप्तिका अर्थ पूर्ण और अपर्याप्तिका अर्थ अपूर्ण।

प्र०—वह पूर्णता और अपूर्णता किसके भावके या अन्य किसी आहार आदिकोंके ?

उ०—वह पूर्णता अपूर्णता कहां पर भावकी अपेक्षा से है कहापर आहारादिकोंका है ऐसा प्रकरण के अनुसार देखकर अर्थ करना चाहिये। जिस ग्रन्थ में जिस प्रकार जिस अवस्था का वर्णन जिस लक्षण से किया है वह देखना चाहिये। अत्र श्री षट्-खंडागममे जो पर्याप्त अपर्याप्तपणाका लक्षण जिस प्रकरण मे जिस प्रकार किया है। उसी प्रकार उसी जगहमें करना चाहिये। अन्यथा बेप्रकरण के लक्षण बे प्रकरणके विषयमे लेकर खेचातानी करना बुद्धिमानों को शोभा नहीं है। हां! यदि उसका लक्षण उसी कथन के पहिले नही मिलता हो तो मात्र अन्य ग्रन्थातरसे लेनेमे कोई हानि नहीं है क्योंकि विषयका स्पष्टीकरण करनेके लिये सामान्यतासे या विशेषतासे कथन जो हो उसी प्रकारके कथन के लिये अन्य ग्रन्थोका सहारा लेना ठीक है। लेकिन जिस ग्रंथ की चर्चा हो उसी ग्रथ से चर्चा करना ठीक है। और उसकी दृढ़ताके लिये अन्य ग्रथ के उदाहरण या दृष्टांत देकर पुष्ट करना चाहिये इस नीतिके अनुसार ही प्रथम श्री षट्खडागममें उनही सूत्रस्थ लक्षण मिल जाय तो ठीक होता है, नहीं मिला तो श्री धवला टीकाका लक्षणको लेकर चर्चा करना अच्छा है।

श्री षट्खंडागमके ३३ नं० सूत्र तक पर्याप्त अपर्याप्त शब्द नहीं आया ३४ नं० सूत्रमे पर्याप्त अपर्याप्त शब्द आया है वह भी एक इन्द्रियका विशेषण लगाया है। एकेंद्रिय विकल्प प्रतिपादनार्थमुभर सूत्रमाह।

एइंदिया दुविहा बादरा सुहुमा
बादरा दुविहा पज्जत्ता।
अपज्जत्ता सुहुमा
दुविहा पजत्ता अपज्जत्ता॥ ३४॥

धवला टीका—एकेंद्रिया द्विविधाः बादरा सूक्ष्मा इति बादर शब्द स्थूल पर्यायः स्थूलत्व चानियतं ततोन ज्ञायते के स्थूला इति चक्षु ग्राह्याश्चेन्न, अचक्षु ग्राह्यानां स्थूलानां सूक्ष्मतोपपत्तेः। अचक्षुग्राह्यानामपि बादरत्वे सूक्ष्म बादराणामविशेषः स्यात् इति चेन्न, आर्षस्वरूपानवगमात्। न बादर शब्दोय स्थूल पर्यायः अपितु बादर नाम्नः कर्मणो वाचकः। तदुदयसहचरितत्वात् जीवोपि बादरः। शरीरस्य स्थौल्य निर्वर्तकं कर्म बादर मुच्यते। सौक्ष्म्य निर्वर्तकं कर्म सूक्ष्मम्।

अर्थः—एकेंद्रियके भेदोके प्रतिपादनार्थ आगेके सूत्र कहते है। एकेंद्रिय दो प्रकारके हैं। बादर और सूक्ष्म।

शंका—बादर शब्द स्थूल पर्यायवाची है। और स्थूलता का स्वरूप कुछ नियत नहीं है। इसलिये यह मालुम नहीं पड़ता है कि कौण २ स्थूल है। जो चक्षु इन्द्रियसे ग्रहण करने योग्य

है वे स्थूल है यदि ऐसा कहा जावे सो भी नहीं बनता है, क्योंकि ऐसा मानने पर जो स्थूल चक्षु इन्द्रियके द्वारा ग्रहण करने योग्य नहीं है उन्हें सूक्ष्मपने की प्राप्ति होजावेगी। और जिनका चक्षु इन्द्रियसे ग्रहण नही हो सकता है, ऐसे को बादर मान लेने पर सूक्ष्म और बादरो मे भेद नहीं रह जाता है ?

समाधान—नही, क्योकि, यह आशका आर्षके स्वरूप की अनभिज्ञता की द्योतक है। यह बादर शब्द स्थूलका पर्याय-वाची नहीं है। किन्तु बादर नामकर्म का वाचक है इसलिये उसे बादर नामकर्म के संबंध से जीव भी बादर कहा जाता है।

(यहां पर बादर नामकर्मको जीवसे भिन्न मानकर कर्मकी मुख्यता लिया है, न कि जीव की मुख्यता। उस बादर नामकर्मके उदयके सहचरितत्व के संबधसे जीव को भी बादर कहा है। उसी तरह इन्द्रिय काय नामकर्म इनके उदयसे भी मुख्य रूप कथन करके इन नामकर्मके सहचरित संबंध से जीव को भी उसी नाम से कथन किया है इससे यह सिद्ध होता है यह नाम-कर्म का कथन द्रव्यकर्म की मुख्यता रखनेसे इन्द्रिय मार्गणा और काय मार्गणाके प्रकरणमे पर्याप्त अपर्याप्त विशेषण भावापेक्षा न होकर द्रव्यरूप पौद्गलिक नोकर्म वर्गणा जो कि पुद्गल विपाकी है उनके साथ ही विशेषण लगाया है यह सिद्ध होता है। इसका खुलासा स्वय धवलाकार श्री वीरसेनाचार्य ने भी किया है सो इसी प्रकरण में देखो)

शंकाः—शरीर के स्थूलताको उत्पन्न करनेवाले कर्मको बादर और सूक्ष्मताको उत्पन्न करनेवाले कर्म को सूक्ष्म कहते हैं। तथापि जो चक्षुइन्द्रियके द्वारा ग्रहण करने योग्य नहीं है। वह सूक्ष्म शरीर है। और जो उसके द्वारा ग्रहण करने योग्य है, वह बादर शरीर है। अतः सूक्ष्म और बादर कर्म के उदय वाले सूक्ष्म और बादर शरीरसे युक्त जीवोको सूक्ष्म और बादर संज्ञा हठात् प्राप्त हो जाती है।

तथापि चक्षुषोऽग्राह्यं सूक्ष्म शरीरं, तद्ग्राह्यं बादरं इतितद्व-तातद्व्यपदेशो हठादास्कं देत्। ननः चक्षु ग्राह्या बादराः अचक्षु ग्राह्याः सूक्ष्मा इति तेषामेनाभ्यामेव भेद समायनदन्यथा तेषामविशे-पनापत्तेः इति चेन्न, स्थूलाश्च भवंति चक्षु ग्राहया नभवन्ति, कोविरोध स्यात।

अर्थः—इससे यह सिद्ध होता है कि चक्षुसे ग्राह्य है वे बादर है और चक्षुसे अग्राह्य है वे सूक्ष्म है। सूक्ष्म बादरोके इन उपरोक्त लक्षणोंसे ही भेद प्राप्त हो गया। यदि उपर्युक्त लक्षण न माना जाय तो सूक्ष्म और बादरोंमें कोई भेद नहीं रह जाता है?

समाधान—ऐसा नहीं है। क्योंकि, स्थूल तो हों और चक्षु से ग्रहण करने योग्य न हो, इस कथन मे कोई विरोध नहीं है।

सूक्ष्म जीव शरीरात् असंख्येय गुणं शरीरं बादरं, तद्वतो जीवाश्च बादराः। ततो असंख्येय गुणहीनं शरीर सूक्ष्मं तद्वतो जीवाश्च

सूक्ष्मा उपचारात् इति कल्पना न साध्वी। सर्व जघन्य बादरांगात् सूक्ष्म कर्म निर्वर्तितस्य सूक्ष्म शरीरस्या संख्येय गुणात्वा तो अनेकांतात।

शंका:—सूक्ष्म शरीरसे असंख्यातगुणी अधिक अवगाहन वाले शरीर को बादर कहते हैं और उस शरीर से युक्त जीवों को उपचारसे बादर कहते है। अथवा बादर शरीरसे असंख्यात गुण-हीन अवगाहन वाले शरीरको सूक्ष्म कहते हैं। और उस शरीरसे युक्त जीवोंको उपचारसे सूक्ष्म जीव कहते हैं ?

समाधान:—यह कल्पना भी ठीक नहीं है। क्योंकि, सबसे जघन्य बादर शरीरसे सूक्ष्म नामकर्म के द्वारा निर्मित सूक्ष्म शरीर की अवगाहना असंख्यात गुणी होनेसे ऊपर के कथन में अनेकांत दोष आता है इसलिये जिन जीवों के बादर नाम कर्म का उदय पाया जाता है वे बादर है। और जिनके सूक्ष्म नाम कर्म का उदय पाया जाता है वे सूक्ष्म हैं यह सिद्ध हुआ। तथा बादर नाम कर्मका उदय दूसरे मूर्त पदार्थोंसे आघात करने योग्य शरीरको उत्पन्न करता है और सूक्ष्म नाम कर्मका उदय मूर्त पदार्थों से आघात नहीं करने योग्य शरीरको उत्पन्न करता है। यही दोनों में भेद है।

यहा पर सर्व कथन मुख्य शरीर की अपेक्षासे ही बादर और सूक्ष्म भेदका वर्णन किया है इतना सूर्य प्रकाश इतना स्पष्ट है

फिर भी श्री षट्खण्डागममें सब कथन भावापेक्षा से ही है शरीर इंद्रिय आदि भी भावात्मक है ऐसे प्रतिपादन करनेवाले पं० सोनीजी यह खुलासा करना चाहिये कि भाव में सूक्ष्म और बादर भेद कैसे हो सकते हैं तथा धवलाकार की पंक्ती तथा षट्खण्डागम के सूत्रकी व्याख्या कैसे किधर रखोगे ? इन सबको अप्रमाण ही सिद्ध करोगे क्या ? इन धवलाकारकी पंक्तियोंसे यह भलीभांति सिद्ध होता है कि यह सूक्ष्म और बादर भेद शरीरकी अपेक्षा से किया है आगे पर्याप्त और अपर्याप्तका भी विशेषण भाव को लगाया है या पुद्गलविपाकी शरीर की अपेक्षा से लगाया सो देखो—

पैर्मूर्तद्रव्यैरप्रतिहन्यमान शरीर निर्वर्तकं सूक्ष्म कर्म । तद्विपरीतशरीरनिर्वर्तक बादर कर्मेति स्थित । तत्र बादरा सूक्ष्माश्च द्विविधाः, पर्याप्ता अपर्याप्ता इति । पर्याप्त कर्मोदय वत. पर्याप्ताः । तदुदयवतां अनिष्पन्न शरीराणां । कथ पर्याप्त व्यपदेशो घटते इति चेन्न नियमेन । शरीर निष्पादकाना भाविनि भूतवदुपचारसस्तदविरोधात । पर्याप्त नाम कर्मोदय सहचराद्वा । यदि पर्याप्त शब्दो निष्पत्ति वाचकः, कैस्तैनिष्पन्ना इति चेत् पर्याप्तिभिः । कियता इति चेत्सामान्येन षड्भवंति । आहार पर्याप्तिः शरीर पर्याप्तिः इंद्रिय पर्याप्तिः आनपानपर्याप्तिः भाषापर्याप्तिः मनपर्याप्तिरिति ॥

अर्थः—इस उपरोक्त कथनसे यह बात सिद्ध हुई कि, जिसका मूर्त पदार्थोंसे प्रतिघात नहीं होता है । ऐसा शरीरको

निर्माण करने वाला सूक्ष्म नाम कर्म है। और इससे विपरीत अर्थात् मूर्त पदार्थोंसे प्रतिघातको प्राप्त होने वाले शरीरको निर्माण करने वाला बादर नाम कर्म है। इनमें बादर और सूक्ष्म दोनों ही प्रत्येक दो दो प्रकार के हैं! पर्याप्त और अपर्याप्त। उनमें से जो पर्याप्त नामकर्मके उदयसे युक्त है उन्हे पर्याप्त कहते हैं।

शंकाः—पर्याप्त नामकर्मके उदयसे युक्त होते हुये भी जब तक शरीर निष्पन्न होता नहीं तबतक उन्हे पर्याप्त कैसे कहते है?

समाधानः—नहीं क्योंकि नियमसे शरीरके उत्पन्न करने वालेको होनेवाले कार्यमें यह कार्य हो गया ऐसा उपचार कर लेने से पर्याप्त संज्ञा करनेमें कोई विरोध नहीं आता। अथवा पर्याप्त नामकर्मके उदयसे युक्त होनेके कारण पर्याप्त संज्ञा दी गई है।

शंकाः—यदि पर्याप्त शब्द निष्पत्तिवाचक है तो यह बत लाइये कि, ये पर्याप्त किससे निष्पन्न होते हैं?

समाधानः—पर्याप्तियोंसे निष्पन्न होते हैं।

शंकाः—वे पर्याप्तियां कितने है?

समाधानः—सामान्यकी अपेक्षा यह है। आहारपर्याप्ति, शरीरपर्याप्ति, इन्द्रिय पर्याप्ति, भाषापर्याप्ति, आनपान पर्याप्ति, मनः पर्याप्ति। इनमेंसे पहिले आहार पर्याप्तिका अर्थ कहते हैं। शरीर नाम कर्मके उदयसे जो परस्पर अनंत परमाणुओंके संबंधसे उत्पन्न हुये है। और जो आत्मासे व्याप्त (आक्रांत) प्रदेशों में

(क्षेत्रमें) स्थित है। ऐसे पुद्गल विपाकी आहार वर्गणा संबंधी पुद्गल स्कंध कर्म स्कंधके संबध से कथंचित् मूर्त पनेको प्राप्त हुए आत्माके साथ समवाय रूपसे संबंधको प्राप्त होते हैं। उन खलभाग और रसभागके भेदसे परिणमन करने रूप शक्तिसे बने हुये आगत पुद्गल स्कंधोंकी प्राप्तिको आहार पर्याप्ति कहते हैं। वह आहार पर्याप्ति अनमुहूर्तके बिना केवल एक समयमें उत्पन्न नहीं हो जाती है क्योंकि आत्माका एक साथ आहार पर्याप्ति रूप से परिणमन नहीं हो सकता है इसलिये शरीरको ग्रहण करनेके प्रथम समयसे लेकर एक अन्तर्मुहुर्तमें आहार पर्याप्ति निष्पन्न होती है। तिलकी खालीके समान उस खल भागको हड्डी आदि कठिन अवयव रूपसे और तिलके तैलके समान रस भागको रस रुधिर वसा वीर्य आदि द्रव अवयव रूपसे परिणमन करने वाले औदारिक आदि तीन शरीरोंकी शक्तिसे युक्त पुद्गल स्कधोंकी प्राप्तिको शरीर पर्याप्ति कहते हैं। वह शरीर पर्याप्ति आहार पर्याप्ति के पश्चात् एक अंतर्मुहुर्त में पूर्ण होती है।

योग्य देशमें स्थित रूपादिसे युक्त पदार्थोंको ग्रहण करने रूप शक्तिके उत्पत्तिके निमित्त भूत पुद्गल प्रचयकी प्राप्तिको इन्द्रिय पर्याप्ति कहते हैं। यह इन्द्रिय पर्याप्ति शरीर पर्याप्तिके पश्चात् एक अन्तर्मुहुर्तमें पूर्ण होती है परंतु इन्द्रिय पर्याप्तिके पूर्ण होजाने पर भी उसी समय बाह्य पदार्थ संबंधी ज्ञान उत्पन्न

नहीं होता है। क्योंकि उस समय उसके उपकरण रूप द्रव्येंद्रिय नहीं पाई जाती है। उच्छ्वास निश्वासरूप शक्तिकी पूर्णताके निमित्तभूत पुद्गल प्रचयकी प्राप्तिको आनपान पर्याप्ति कहते हैं। यह पर्याप्ति भी इन्द्रिय पर्याप्तिके अनन्तर एक अन्तर्मुहुर्त काल व्यतीत होने पर पूर्ण होती है। भाषा वर्गणाके स्कंधोंके निमित्त से चार प्रकारकी भाषा रूपसे परिणमन करनेकी शक्तिके निमित्त भूत नो कर्म पुद्गल प्रचयकी प्राप्तिको भाषा पर्याप्ति कहते है। यह पर्याप्ति भी आणपान पर्याप्तिके पश्चात् एक अन्तर्मुहुर्तमें पूर्ण होती है। अनुभूत अर्थके स्मरणरूप शक्ति के निमित्तभूत मनो-वर्गणाके स्कंधोसे निष्पन्न पुद्गल प्रचयको मनःपर्याप्ति कहते है अथवा द्रव्य मनके आलम्बनसे अनुभूत अर्थके स्मरण रूप शक्ति की उत्पत्तिको मनः पर्याप्ति कहते है।

इन छहों पर्याप्तिका आरंभ युगपत् होता है। क्योंकि जन्म समयसे लेकर ही इनका अस्तित्व पाया जाता है। परतु पूर्णता क्रमसे होती है। तथा इन पर्याप्तियोंकी अपूर्णताको अपर्याप्ति कहते हैं देखो श्री धवला प्र० भाग १ पुस्तक पेज न. २५३ से २५७

तत्राहारपर्याप्तेरर्थ उच्यते। शरीर नाम कर्मोदयात् पुद्गल विपाकिनः आहारवर्गणागत पुद्गल स्कंधाः समवेतानन्त परमाणु निष्पादिता आत्मावष्टब्ध क्षेत्रस्थाः कर्म स्कंध सबधतो मूर्तिभूत-मात्मानं समवेतत्वेन समाश्रयंति। तेषामुपगतानां पुद्गल स्कंधानां खलरसपर्यायैः परिणमन शक्तेर्निमित्तानामाहार पर्याप्तिः साचनांत-

मुहुर्त मंतरेण समये नैकेनैवोपजायते । आत्मनोऽक्रमेण तथ विध परिणामना भावात् शरीरोपादान प्रथम समयादारभ्यांतर्मुहुर्ते नाहार पर्याप्तिर्निष्पद्यते । इतियावत् । तं खल भागं तिलखलोपममस्थ्यादिस्थिरावयवैः तिल तैल समान रसभागं रसरुधिरवसा शुक्रादि द्रवावयवैरौदारिकादि शरीरत्रय परिणामशक्त्युपेताना स्कधानामा व्याप्तिः शरीर पर्याप्तिः साहार पर्याप्तेः पश्चादन्तर्मुहुर्तेन निष्पद्यते । योग्य देश स्थित रूपादिविशिष्टार्थ ग्रहण शक्त्युत्पत्ते र्निमित्त पुद्गल प्रचया वाप्तिरिन्द्रिय पर्याप्तिः सापिततः पश्चादन्तर्मुहुर्तादुपजायते । न चेन्द्रिय निष्पत्तौ सत्यामपि तस्मिन्क्षणे बाह्यार्थ विषय विज्ञान मुत्पद्यते, तदा तदुपकरणा भावात् । उच्छ्वासनिस्सरण शक्तेर्निष्पत्ति निमित्त पुद्गल प्रचयावाप्तिः आनपान पर्याप्तिः । एषापि तस्मादंतर्मुहुर्ते काले समती ते भवेत् । भाषावर्गणाया स्कंधाच्चतुर्विध भाषा कारेण परिणामन शक्तेर्निमित्त नो कर्म पुद्गल प्रचयावाप्तिर्भाषा पर्याप्तिः । एषापि पश्चादन्तर्मुहुर्तादुपजायते । मनोवर्गणा स्कध निष्पन्न पुद्गल प्रचयः अनुभूतार्थ स्मरण शक्तेः उत्पत्तिर्मनः पर्याप्तिः, द्रव्यमनोवष्ट मेनानु भूतार्थ स्मरण शक्तेरुत्पत्तिर्मन पर्याप्तिर्वा । एतासां प्रारंभोऽक्रमेण जन्मसमयादार—भ्य तासासत्वाभ्युपगमात् । निष्पत्तिस्तु पुनः क्रमेण । एतासामनिष्पत्तिर पर्याप्तिः । (इसका अर्थ ऊपर पहिले ही किया है)

पं० सोनीजी ! अपने कथन को पर्याप्तिको जीव विपाकीके तरफ झुकाया है । क्योंकि पं० जीको श्री षट्खडागमका सारा कथन भावात्मकही है ऐसा सिद्ध करनेका पक्ष है इसलिये पक्षांधतासे

श्री धवलाकृत पर्याप्तियोंका विषय और उनके लक्षणादिको छोड़ कर जहां पर जीव विपाकीका कथन है वहां परका प्रमाण देकर पर्याप्तिको जीव विपाकी सिद्ध करनेका प्रयास किया है। मै पर्याप्तिको जीव विपाकी मानता नहीं यह भाव नहीं समझ लेना चाहिये परन्तु श्री धवलाका प्रमाण मैने जो दिया है वह पर्याप्तिको जीव विपाकी न मान कर पुद्गल विपाकी मानते हुये आहार शरीरादि पर्याप्तियोंको पुद्गल विपाकी मानकर शरीरके साथ उनको घटाया है जैसे—

"यदि पर्याप्ति शब्दो निष्पत्ति वाचकः, कैस्तैनिष्पन्नाः इति चेत् पर्याप्तिभिः कियंतास्ता इति चेत् सामान्येन षट् भवंति। आहार पर्याप्तिः शरीर पर्याप्तिः इत्यादि यहां पर जीव शक्ति को मुख्यता न करके शरीर नाम कर्मोदयसे पुद्गल विपाकी आहार वर्गणागत पुद्गल स्कंधोंकी आप्ति-प्राप्तिको आहार पर्याप्ति कहा है इस प्रकार छह पर्याप्तियोंके लक्षणसे ही मालुम होता है कि, पर्याप्तियों का कथन द्रव्यात्मक है द्रव्य के विशेषण है। भाव के विशेषण नहीं इसलिये मानुषी के पीछे जो पर्याप्ति अपर्याप्ति विशेषण है वे द्रव्य शरीरादिकों के अपेक्षासे किया है। सूत्र नं० ९२ की वृत्ति में भी—पर्याप्त नाम कर्मोदयाच्छरीरनिष्पत्त्यपेक्षया इतना साफ लिखा है और श्री वीरसेन आचार्यने पर्याप्तिका लक्षण भी द्रव्यात्मक किया है। भावात्मक नहीं किया है। क्योंकि पर्याप्तियों को पुद्गल विपाकि आहार वर्गणागत पुद्गल स्कंधके प्राप्तिरूप

लक्षण माना है और साफरूपसे कहा है कि, तेषामुपगतानां पुद्गल स्कंधानां खलरस पर्यायैः परणमन शक्तेर्निमित्ता नामाप्तिराहार पर्याप्तिः हिंदि अर्थः उन खल भाग और रस भागके भेदसे परि-णमन करनेरुप शक्तिसे बने हुये आगत पुद्गल पुद्गल स्कंधों की प्राप्तिको आहार पर्याप्ति कहते हैं । उसी प्रकार औदारिकादि शरीरत्रय परिणाम शक्तिसे युक्त पुद्गल स्कधोंकी प्राप्तिको शरीर पर्याप्ति कहते हैं । इन सब श्री धवलाके कथनसे शरीर नाम कर्मो दयसे शरीर पर्याप्तिः ऐसी पक्तीसे साफरुपसे पर्याप्ति द्रव्य शरीर का विशेषण ही है ऐसा सिद्ध है । प० सोनीजी इस विषय पर तथा धवलाकृत टीकाका अच्छी तरह मनन करके देखना चाहिये ग्रंथांतरको देखनेकी जरूरी नहीं वीरसेनाचार्यकी कृती परसे ही उसे देखो ।

श्री धवलाकारने पर्याप्तिको प्राणके साथ किसप्रकारका संबंध माना है सो भी देखना जरूरी है । यदि इन पंक्तियों पर मनन पूर्वक विचार नहीं करोगे तो इस विषयका यथार्थ स्वरुपका निर्णय नहीं होगा ।

"पर्याप्ति प्राणयोः को भेद इतिचेन्न, अनयोर्हिमवद्विंध्ययोरिव भेदोपलंभात् । यत आहार शरीरेंद्रियानापानभाषामनः शक्तीनां निष्पत्तेः कारण पर्याप्तिः । प्राणिति एभिरात्मेति प्राणाः पंचेन्द्रिय मनोवाक्कयानापानायूंषि इति ।

अर्थः—शंका पर्याप्ति और प्राण में क्या भेद है ?

समाधानः—नहीं, क्योंकि इनमें हिमवन और विंध्याचल पर्वतके समान भेद पाया जाता है। आहार, शरीर, इन्द्रिय आन-पान भाषा और मनरूप शक्तियोंकी पूर्णताके कारण को पर्याप्ति कहते हैं। और जिनके द्वारा आत्मा जीवन संज्ञा को प्राप्त होता है उसे प्राण कहते हैं। यही दोनोंमें भेद है।

पं० सोनीजीका भाव है कि "शक्ति निष्पत्तिः पर्याप्तिः, इस गोमट्टसार पंक्तिके अनुसार आत्माके शक्तिको पर्याप्ति कहते हैं। परंतु यह लक्षण गोमट्टसार में किया है। यह ध्यान में रखना श्री धवलाजी में यह लक्षण ऐसा है कि, "शक्तीनां निष्पत्तेः कारणं पर्याप्तिः, । जीवके शक्तियोंके निष्पत्तीके कारण को पर्याप्ति माना है इसलिये पर्याप्ति और प्राणमें भेद माना है यदि जीवन हेतुको पर्याप्ति मानते थे तो जीव विपाकी मानकर पर्याप्ति और प्राण इन दोनोंमें कार्य कारण भाव मानते थे जैसे कि गोमट्टसारमें माना है। "तत्परिणतिरेवतत्प्राणाः" इस प्रकार माना है लेकिन श्री धवलाजी में कहा है कि—

पर्याप्तियोमें आयुका सद्भाव नही होनेसे और मनोबल वचनबल तथा उच्छ्वास इन प्राणोंके अपर्याप्त अवस्थामें नहीं पाये जानेसे पर्याप्ति और प्राणोमें भेद समझना चाहिये। "पर्याप्तिषु आयुषोऽसत्वान्मनोवागुच्छ्वासं प्राणानाम पर्याप्त कालेऽसत्वाच्चत-योर्भेदात् ॥

इस प्रकार भेद माना है। पुनः अथवा शब्द से भी कुछ कहा है सो भी देखिये। "अथवा जीवनहेतुत्व तत्स्थमनपेक्ष्य शक्ति निष्पत्तिमात्र पर्याप्तिरुच्यते जीवनहेतवः पुनः प्राणा इति तयोर्भेदः।

अर्थः—अथवा इन्द्रियादि में विद्यमान जीवनके कारण पने की अपेक्षा न कर के इन्द्रियादिरूप शक्ती की पूर्णतामात्र को पर्याप्ति कहते हैं। और जो जीवनको कारण हैं। उन्हें प्राण कहते हैं इस प्रकार इन दोनोंमें भेद समझना चाहिये। हिंदी टीका पेज नं० २५७

पं० सोनीजीके मतानुसार पर्याप्तिको जीव विपाकी मानकर पर्याप्तिके जीव विपाकी माननेपर पर्याप्ति और प्राणमें कारण कार्यका संबध प्राप्त होता था। क्योंकि श्री गोमट्टसारके अनुसार "तत्परिणति रेवतत्प्राणाः" पर्याप्तिके परिणतिको प्राण माननेपर दोनोंमें भेद कहांसे आवेगा। तथापि आहार पर्याप्ति प्राणोमें नहीं है। और आयु प्राण पर्याप्ति में नहीं। बाकीके सब है जैसे शरीरपर्याप्ति, शरीरप्राण। इन्द्रियपर्याप्ति, इन्द्रिय प्राण। स्वासोच्छ्वासपर्याप्ति स्वासोच्छ्वास प्राण। भाषापर्याप्ति भाषाप्राण। मनःपर्याप्ति, मन प्राण ऐसी कारण कार्य बैठती है। तथापि आहार पर्याप्ति एक अलग रही तथा आयु प्राण है इसके लिये पर्याप्ति नहीं। और आहार पर्याप्ति है और इसके लिये प्राण नहीं। इसलिये तत्परिणति रेवतत्प्राणाः यह वाक्य सब पर्याप्ति और सब

प्राणोंमें घटित नहीं होता है। इसलिये पर्याप्ति और प्राणों में भेद माना है। श्री धवलाकारने पर्याप्ति का लक्षण जीव के शक्ति पर घटाया नहीं। जीव के उस शक्ति के कारण पुद्गल स्कंधोंकी प्राप्ति पर घटाया है। इन दोनों कथनका विषय नहिं समझनेके कारण सोनीजी अपने पक्षकी धुनमें ही लिखते गये हैं। इसलिये गड़बड़ घोटाला में पड़गये।

विचारशील पाठकगण! आपके सामने दोनों पक्षोंके प्रमाण भूत कथन रक्खा है और दोनों कथनमें परस्पर विरोध भी नहीं है। लेकिन अपेक्षा दृष्टिकोण अलग २ है। हमें श्री धवलाकारकी पर्याप्ति व्याख्याका ही अवलंबन करके श्री षट्खंडागमके सूत्रोंका अर्थ करना चाहिये इसलिये सूत्र ९२। ९३ में जो पर्याप्त अपर्याप्त शब्द सूत्रोंमें है। और उसकी व्याख्या श्री धवलाकारने जो किया है वही व्याख्या मुख्य करके पर्याप्ति अपर्याप्ति विशेषण शरीरके साथ ही लगाना चाहिये व्यर्थ ही ग्रथांतरके घोड़ दोड़ करना ठीक नहीं है इसलिये ग्रथकारकी व्याख्याका अवलंबन करके सम्यगमार्ग में आना ठीक है। पर्याप्त नाम कर्मोदयसे शरीरकी पूर्णता और अपूर्णताको पर्याप्त अपर्याप्त करना ठीक है।

पं० सोनीजीने कारण रूप पर्याप्ति और कार्यरूप पर्याप्ति इनके भेदस्वरूपको अच्छी तरह नहीं जाना है। श्री धवलाकारने इस बातको अच्छी तरहसे स्पष्ट कर दिया है उसको प० जी ने अपने ट्रेक्टमें प्रमाणभूत पक्ति को तो लिया है। तो भी

उसका खुलासा रूपसे कथन नहीं किया। वास्तविक कारणरूप पर्याप्ति जीवके भाव (शक्ति) रूप है और कार्यरूप पर्याप्ति द्रव्य-रूप है इसमें तिलमात्रभी संदेह नहीं है। कारणरूप जीवशक्ति को पर्याप्त कहा है। जैसे "पर्याप्त कर्मोदयवंतः पर्याप्ताः अर्थात् पर्याप्त कर्मोदयसे युक्त है उसे पर्याप्त कहते हैं। शंकाः—तदुदय वतां अनिष्पन्नशरीराणां कथंपर्याप्त व्यपदेशो घटते। अर्थः-शंका-पर्याप्त नामकर्मके उदयसे युक्त होते हुए भी जब तक शरीर निष्पन्न नहीं हुआ है तब तक उसे पर्याप्त कैसे कह सकते हैं?

समाधानः—इति चेन्न, नियमेन शरीर निष्पादकानां भाविनि भूतवदुपचारतस्तदविरोधात्। पर्याप्तनाम कर्मोदय सहचराद्वा। अर्थात् समाधानः—

ऐसी शंका करना ठीक नहीं क्योंकि, नियमसे शरीरको उत्पन्न करने वाले कार्यमें यह कार्य होगया ऐसा उपचार करलेनेमें पर्याप्त ऐसा कहनेमें कोई विरोध नहीं आता है। अथवा पर्याप्त नामकर्म के उदयसे युक्त होनेके कारण पर्याप्त संज्ञा दीगई है। शंकाः—यदि पर्याप्त शब्दो निष्पत्ति वाचकः कैस्तै निष्पन्नाः। शंकाः—यदि पर्याप्त शब्द निष्पत्ति वाचक है तो बतलाइये कि ये पर्याप्त जीव किनसे निष्पन्न होते हैं। इति चेत्पर्याप्तिभिः। पर्याप्तियों से निष्पन्न होते हैं।

पं० जी यह उपरोक्त श्रीमद्वीरसेन भगवानने स्पष्ट खुलासा किया हुआ विषय अब आपके ध्यानमें आया होगा कि कारण

रूपको पर्याप्त कहा और कार्यरूपको पर्याप्ति कहा है। और पर्याप्ति ६ छह कहकर प्रत्येकके साथ पर्याप्ति शब्द लगाया है। आहार पर्याप्तिः शरीर पर्याप्तिः इत्यादि अर्थात् पर्याप्तियोसे निष्पन्न पर्याप्तः ऐसे। तथा और एक बातका स्पष्टीकरण किया है कि, नियमेन शरीर निष्पादकाना भाविनि भूतवदुपचारस्तदविरोधात्। अर्थात् नियमसे शरीर निष्पादकोंको भावीकार्यमें भूतवत् उपचार किया है। इस धवलोक्त प्रकरणसे धवलाजीमें कार्यरूप पर्याप्तिका कथन है इसलिये कार्य-रूप पर्याप्तिकी व्याप्ति शरीरके साथ होनेसे पर्याप्तिका नामही शरीर है इतने कहने पर आपकी समज (समाधानी) नहीं हुआ हो तो लीजिये श्रीधवलाजीका प्रमाण "तत्राहार पर्याप्तरर्थ उच्यते शरीर नाम कर्मोदयात् पुद्गल विपाकिन· आहारवर्गणागत पुद्गल स्कधाः समवेतानत परमाणु निष्पादिता आत्मावष्टब्ध क्षेत्रस्थाः कर्म स्कध संबधतो मूर्तिभूतमात्मनं समवेतत्वेन समाश्रयति। तेषामुपगताना पुद्गल स्कंधानां खल रस पर्यायै. परिणामन शक्तेर्निमित्तानामाप्ति-राहार पर्याप्तिः।

अर्थः—इनमेंसे प्रथम आहार पर्याप्तिका अर्थ कहते है। शरीर नामकर्मके उदयसे जो परस्पर अनत परमाणुओके संबंधसे उत्पन्न हुए हैं। और जो आत्मासे व्याप्त प्रदेश क्षेत्रमें स्थित है ऐसे पुद्गलविपाकी आहारवर्गणा संबधी पुद्गल स्कध, कर्म स्कंध के संबंधसे कथंचित् मूर्तपनेको प्राप्त हुये आत्माके साथ समवाय रूपसे संबधको प्राप्त होते हैं। उन खलभाग और रसभागके भेद

से परिणामन करने रूप शक्तिसे बने हुए आगत पुद्‌गलस्कंधोंकी प्राप्तिको आहार पर्याप्ति कहते हैं।

"साचनांतर मुहुर्तमंतरेण समयेनैकेनैवोपजायते आत्मनो अक्रमेण तथाविध परिणामा भावात् शरीरोपादान प्रथम समया दारभ्यान्तर मुहुर्तेनाहार पर्याप्तिर्निष्पद्यते इति यावत्।

अर्थः—वह आहार पर्याप्ति अन्तर्मुहुर्तके बिना केवल एक समयमें उत्पन्न नहीं होजाती है। क्योंकि, आत्माका एक साथ आहार पर्याप्तिरूपसे परिणामन नहीं हो सकता है। इसलिये शरीर को ग्रहण करनेके प्रथम समयसे लेकर एक अंतर्मुहुर्तमें आहार पर्याप्ति निष्पन्न होती है।

पं० जी! यह कार्यरूप पर्याप्तिका ही कथन श्री धवला कारने किया है यह स्पष्ट प्रमाण दिखाया है मैंने प्रथममें भी छह पर्याप्तियोका स्वरूप लिखा है उसमें देखना या श्री धवला पं० न० २५४ से २५७ तक देखना, यद्यपि मनुष्य तिर्यंच गतिमें कारण कार्यमें कुछ विलंब लगता है तो सबही छहों पर्याप्ति भिन्न मुहुर्तमे ही कार्यरूप बनते हैं। श्री धवलामे सब जीवोके समझने के लिये अच्छी तरहसे कारण कार्यरूपका विषयही प्रगट किया है केवल कारणका नहीं दोनोंका प्रतिपादन किया है। इसलिये पर्याप्त शब्द शरीर वाचकभी है। यह धवलाजी में सूर्यप्रकाश इतना स्पष्ट किया है। वह छिप सकता नहीं।

शरीर पर्याप्तिका स्वरूपभी धवलाजीमें किया है उसके प्रत्येक

अक्षरका यथार्थ अर्थ कीजियेगा।

तंखलभागं तिल खलोपममस्थ्यादि स्थिरावयवैस्तिल तैल समानं रसभागं, रस रुधिरवसा शुक्रादिद्रवावयवैरौदारिकादि शरीरत्रय परिणाम शक्त्यु पेतानां स्कंधानामवाप्तिः शरीर पर्याप्तिः। साहार-पर्याप्तेः पश्चादन्तर मुहुर्तेन निष्पद्यते।

अर्थः—उस तिलके खलीके समान उस खलभागको हड्डी आदि कठिन कठिन अवयवोमे और तिलके तैलके समान रस भागको रस, रुधिर, वसा, वीर्य, (शुक्र) आदि द्रव अवयव रूपसे परिणमन करने वाले औदारिकादि तीन शरीरोकी शक्तिसे युक्त पुद्गल स्कन्धोंकी प्राप्तिको शरीर पर्याप्ति कहते वह शरीर आहार पर्याप्तिके पश्चात् एक अंतर्मुहुर्तमे पूर्ण होनी है।

प० जी ने अपने ट्रैक्टमें श्री धवलाजी मे कथित आहार पर्याप्तिके तथा शरीर पर्याप्तिके स्वरूप कथनका प्रमाण भूत उतारा न देकर ग्रंथातरका प्रमाण क्यों दिया यह एक विचारणीय बातहै। प० जीके इस नीतिसे यह मालुम पड़ता है कि श्री धवलाकारने कार्य पर्याप्तिका ही वर्णन किया है। उस कार्यपर्याप्तिसे भावात्मक कथन न होकर द्रव्यात्मक कथन सिद्ध होता। वह कथन अपनेका इष्ट मतलबका विरोधी होनेसे ग्रंथांतरके तरफ दौड़ लगाई है। पं० जी! सीधी श्री धवलाके प्रमाणसे ही पर्याप्तिका लक्षण को लेकर कथन करो फिर आप द्रव्यात्मक सिद्ध करो चाहे भावा-त्मक सिद्धकरो दोनों भी सापेक्ष रीतिसे सिद्ध करो। जो है वह जन-

ताके सामने रखनेमें कुछ हानि होती नहीं अपनेको ग्रथ निर्दोषीका ध्येय है न कि मान बढाईका। या अपने बुद्धि चातुर्यताका दिग्दर्शन कराना है।

मूलाचारकी वृत्तीमें श्रीवसुनन्दीने कहीं पर कार्य पर्याप्तिका वर्णन किया है कहीं पर कारण पर्याप्तिका वर्णन किया है देखिये उसी गाथाकी टीकामें-

आहारे य सरीरे तह इंदिय आणपाण भासाए
होंति मणोविय कमसो पज्जत्तीओ जिणक्खादा ॥४॥

टीका:—आहारेय-आहारस्याहारविषयेवा कर्म नो कर्म स्वरूपेण पुद्गलानामादानमाहारस्तृप्तिकारण पुद्गल प्रचेया वा। सरीरे—शरीरस्य शरीरे वौदारिकादि स्वरूपेण पुद्गल परिणाम: शरीरं। तह-तथा इन्दिय—इन्द्रियस्येंद्रियविषये वा पुद्गल स्वरूपेन परिणाम: आणपाण—आनप्राणयो: आनप्राण विषये वोच्छ्वास निस्वास वायुरुपेण पुद्दल प्रचय आनप्राणनामा। भाषाए—भाषाया भाषा विषयेवा शब्दरुपेण पुद्गल परिणामो भाषा। होति—भवति। मणो विय। मनसोपि च मनो विषयो वा चित्तोत्पत्ति निमित्त परमाणु निचयोमन: कमसो—क्रमश: क्रमेण यथानुक्रमेणागमन्यायेन वा। पज्जत्ति— पर्याप्तय: संपूर्णता हेतव:। जिणक्खादा जिनख्याता सर्वज्ञ प्रतिपादिता: ॥ अर्थात् इस टीकामें श्री वसुनन्दीनें साफ तरहसे एक कारणरुप पर्याप्ति और कार्यरुप पर्याप्तिका स्वरूप कहा है। जैसेकि आहारके अथवा आ-

हार विषयमें ऐसा साफ रुपसे रखकर आहार विषये कर्म नो कर्म स्वरुपसे परणत पुद्गलोंका ग्रहण करना आहार है अथवा तृप्ति कारण पुद्गलके प्रचयोंका ग्रहण करना आहार पर्याप्ति है। ऐसा ही साफ रुपसे कार्य रुपमे भी वर्णन किया है २ शरीर पर्याप्ति शरीरके अथवा शरीरमें औदारिकादि स्वरुपसे पुद्गलका परिणाम को शरीर कहा है ऐसा प्रत्येकमें कार्य रुपसे प्रथम वर्णन किया है फिर कारण रुप पर्याप्तिका भी वर्णन किया है। कार्य पर्याप्ति का वर्णनको पं० जी न देखकर कारण पर्याप्तिको ही देखा है। यह पक्षपात नहीं तो क्या है? पं० जीने अपने नम्र निवेदनमे लिखा है कि मै पक्षपात नहीं करके युक्ति वचनको स्वीकार करूँगा। और श्लोक भी कहा है।

पक्षपातो न मे वीरे न द्वेषो कपिलादिषु।
युक्तिमद्वचनं यस्य तस्य कार्य परिग्रहः॥१॥

लेकिन प० जी अपने दृढ प्रतिज्ञामें स्थिर नहीं रहे और पक्षपात किया है। ऐसा बराबर कृतिसे सबको दीख रहा है। खैर श्री धवला ग्रथमें भी कार्य पर्याप्तिका विवेचन किया हुआ छोड़के अन्य ग्रंथोंमें शरण लिया वहां प० भी वही कार्य पर्याप्तिका ही विषय पहिले था लेकिन उसे छिपाकर कारण पर्याप्तिका आश्रय लिया तो भी पं० जी अपने कार्यको करनेको सफल नहीं हुये फसगये क्योंकि जो भी यथार्थ स्वरूपका लोप करना चाहा तो कभी त्रिकालमें भी वस्तुकी यथार्थ परिस्थितिको कोई भी ढक सकता

नहीं श्री वसुनन्दी का अभिप्राय भी आपके एकांत अभिप्राय के विरुद्ध भी सिद्ध होगया अब जो द्रव्य प्ररूपणाका विषय लिया है उस पर भी विचार करते है। वास्तविक देखा जाय तो द्रव्य प्ररूपणाका प्रकरण पं० जीके मंतव्यके विरुद्ध सिद्ध करता है। क्योंकि, पं० जी श्री षट्खंडागममें सब ही कथन भावकी मुख्यता से किया है द्रव्यका कथन ही नहीं है ऐसा कह रहे हैं और पर्याप्ति अपर्याप्ति विशेषण शरीरके साथ नहीं है जीवके साथ ही है ऐसा एकांत पक्षाग्रह है इसलिये उसका खण्डन होता है। श्री धवलाकारने पहिले पर्याप्ति अपर्याप्त यह कारण की अपेक्षा से वर्णन न करके कार्यकी अपेक्षामे किया है। यह भली भाति प्रमाण के साथ दिखाया है। कारण-पर्याप्तिकी अपेक्षासे विचार करने पर निवृत्य पर्याप्तकका अस्तित्व ही नहीं रहता। क्योंकि निवृत्य पर्याप्तक नामक कोई नाम कर्म नहीं है। निवृत्य पर्याप्तिका नाम बन रहा है और अभी पूर्ण नहीं हुआ है किंतु नियमसे आगे होने वाला है। वह कार्य पर्याप्ति में ही होने वाले अवस्थाका नाम है। और निर्वृत्य पर्याप्तक पुद्गलरुप द्रव्य शरीर पर्याप्तिके पूर्णता के प्रथम अपूर्णावस्थाका नाम है यह अवस्था पर्याप्ति जीवोंमें ही अन्तर्भूत करते हैं। इसलिये इसको अपर्याप्ति में नहिं गिननेके लिये यह खुलासा किया है कि, सूत्रो में

बेइन्दिय-तीइन्दिय-चउरिंदिय। तस्सेवज्जत्ता अपज्जत्ता। दव्वपमाणेण केवडिया, असंखेज्जा ॥७७॥

इस सूत्रमें जो पज्जत्त अपज्जत्त शब्द है । वह अपर्याप्तकोंकी संख्यामें निर्वृत्य पर्याप्तकोंका ग्रहण होनेका प्रसंग आवेगा इसलिये यहा पर पर्याप्त नामक उदयसे युक्त जीवोंका ग्रहण करो । अन्यना पर्याप्त नाम कर्मोदय से युक्त निवृत्य पर्याप्तक जीवोंका भी अपर्याप्त इस बचनसे गृहण प्राप्त हो जावेगा। इसी प्रकार पर्याप्त ऐसा कहने पर पर्याप्त नाम कर्म के उदयसे युक्त जीवों का ग्रहण करना चाहिये । अन्यथा पर्याप्त नामकर्मोदयसे युक्त निर्वृत्य पर्याप्तक जीवोंका ग्रहण नहीं होगा । द्वींद्रिय, त्रींद्रिय और चतुरिंद्रिय ऐसा कहने पर द्वींद्रिय जाति त्रींद्रिय जाति और चतुरिंद्रिय जाति नाम कर्मोदयसे युक्त जीवों का ग्रहण करना चाहिये ।

शंका:—जिन जीवोंके दो इन्द्रियां पाई जाती है वे द्वींदिय जीव है । ऐसा ग्रहण करनेमें क्या दोष है ?

समाधान:—नहीं क्योंकि, उपर्युक्त अर्थके ग्रहण करने पर अपर्याप्त कालमें विद्यमान जीवोंके इन्द्रिया नहीं पाई जानेसे उनके नहीं ग्रहण होनेका प्रसंग होजायगा ।

शका:—क्षयोपशमको इन्द्रिय कहते हैं । द्रव्येन्द्रियको इन्द्रिय नहीं करते हैं । इसलिये अपर्याप्त कालमें द्रव्येन्द्रियोंके नहीं होने परभी द्वींद्रियादि पदोंके द्वारा उस जीवोंका ग्रहण हो जायगा ? द्रव्येन्द्रियको इन्द्रिय कहते हैं ।

समाधान:—ऐसा नहीं, क्योंकि, यदि इन्द्रियका अर्थ क्षयोपशम करोगे तो सयोगी केवली भगवानको अनिंद्रियपनेका प्रसग आवेगा ।

शका.—आजानेदो

समाधान:—ऐसा कहना ठीक नहीं क्योंकि यह सूत्र स-योगी केवलीको पचेन्द्रिय रूपसे प्रतिपादन करता है।

शका: वह सूत्र कहां पर है।

समाधान:—यही आगे है। सूत्र:-पंचिंदिया सासण सम्मा-इठ्ठिपहुडि जाव अयोगिकेवलित्ति दव्वपमाणेण केवडिया, ओघमिदि।

अर्थ:—पंचेन्द्रिय जीव सासादन सम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगि केवलि गुणस्थान् तक द्रव्य प्रमाणकी अपेक्षा कितने हैं। सामान्य गुणस्थानके समान। पांचवें गुणस्थान तक पल्योपमके असंख्यातवे भाग और छठेसे संख्यात हैं। धवला पे० नं० ३१२।१३ विस्तार भयास्तव मागधी प्रमाण दिया नहीं हिन्दी का अनुवाद प्रमाणमे दिया है।

उपरोक्त धवलाका प्रमाण पं० सोनीजी के मंतव्यका पूरा खडन करने वाला सिद्ध हुआ। एक बात यहां स्पष्ट कर देना चा-हते हैं कि प० जीने जान बूझ कर सिद्धात का घात करने की प्रतिज्ञा किया है। क्योंकि पूरा प्रकरण न देनर एकाध पंक्ति देकर अपना हठाग्रहपक्ष सिद्ध करना चाहते हैं। लेकिन किस तरहसे सिद्ध होगा?

क्योंकि जितना प्रमाण दिया है। उसके आगे चार पंक्तियां प्रमाणमें देते तो अच्छा होता था। उसमें सविस्तार वर्णन करके

एकान्त भावपक्षका खंडन श्री धवलाकारने किया है। तथा षट्-खंडागमकार भी अपने सूत्र में कहीं पर कारण पर्याप्तियोंका कहा पर कार्य पर्याप्तियोंका कथन खुद किया है। कहीं पर कार्य पर्याप्तिका वर्णन किया है। कहा पर कारण पर्याप्तिका वर्णन किया है। कारण पर्याप्तियोका वर्णन इसलिये किया है कि, निवृत्त्य पर्याप्तकोंका पर्याप्तमे अनभूत करने को कहा है। इससे सब ग्रंथका कथन भावात्मक मानना मोटा भ्रम है। यदि भावात्मकका ही कथन मानोगे तो "सयोगिकेवलिको पचेंद्रिय पणा कैसे सिद्ध करोगे ? पं० जी सप्रमाण सिद्ध करो ?

तथा सूत्र ॥ पंचिंदिया असण्णिपंचिंदियपहुडि जाव अजोग केवलित्ति ॥ ३७ सत् प्र०

सूत्रस्थ पंचिंदिया का अर्थ भावेन्द्रिय करोगे या द्रव्येंद्रिय करोगे? भावेंद्रिय करोगे तो संयोग केवली और अयोग केवलीको भावेंद्रिय माननेका प्रसंग आता है ? इस विरोधका परिहार किस तरहसे करोगे ? ऐसा प्रश्न करके श्रीधवलाकारने जाति नामकर्मोदयका आश्रय लिया है। जाति नाम कर्मोदय शरीर सहचारी है। इसलिये वह शरीर कार्यरूप पर्याप्तिका ही द्योतक है तथा "भावेंद्रिय जनित द्रव्येंद्रिय सत्वापेक्षया पंचेंद्रियत्व प्रतिपादनात" अर्थ भावेंद्रियोके निमित्तसे उत्पन्न हुई द्रव्येंद्रियोंके सद्भावसे उन्हें पंचेंद्रिय कहा है इस प्रकार कार्यपर्याप्तिका भी वर्णन इन्द्रिय मार्गणामें है। इसको पं० जी भूल गये इसलिये पं० जी ने रहस्यको यथार्थ

रहस्यका उद्घाटन नहि किया विकृतरूपमें अटकके फँसगये ऐसा कहनेमें कोई आपत्ति नहीं है। या अतिशयोक्ति भी नहीं है। इंद्रिय मार्गणामें भावेंद्रिय तथा द्रव्येंद्रिय दोनोंका कथन है उसी तरह कायमार्गणामें भी "पुढवीकाया दुविहा सुहमा बादरा। बादरा दुविहा पज्जत्ता अपज्जत्ता सुहुमा दुविधा पज्जत्ता अपज्जत्ता। इत्यादि सूत्र न० ४०वा देखो।

अर्थः- पृथवीकायिक दोप्रकारके हैं। बादर और सूक्ष्म ये दोनो भी प्रत्येक दो प्रकारके हैं पर्याप्त और अपर्याप्त। टीका में:— पर्याप्त नामकर्मोदय जनित शक्त्या विर्भाविनवृत्तयः पर्याप्ताः अर्थ पर्याप्तिनामकर्मके उदयसे उत्पन्न हुई शक्तिसे अपने२ योग्य पर्याप्तियोंक पूर्ण करने रूप अवस्था विशेष प्रगट होगयी है। उन्हें पर्याप्त कहते हैं।

यह पर्याप्ति भी कार्यरूप है। जहा कार्य है वहांपर कारण है इसलिये कारण निष्पत्ति और कार्य निष्पत्ति इन दोनोंकी अपेक्षा से वर्णन ग्रंथकार ने किया है। यदि कारणरूप पर्याप्तिका वर्णन किया और कार्यका वर्णन न किया तो निष्क्रिय (कार्य रहित) पर्याप्तियां निष्फल ठहरते हैं यह भी ध्यानमें रखना चाहिये था लेकिन ध्यानमें नहीं रक्खा यह अच्छा नहीं हुआ।

पृथिवीकायिक कहनेसे शरीर सह जीव यह बोध आबाल गोपाल को होता है। तथा श्री धवलामें कहाभी है कि, "पृथिव्येवकायः पृथिवीकायः स एषामस्ति इति पृथिकायिकाः। न का-

मेण शरीरमात्र स्थितानां पृथिवीकायत्वा भावः। भाविनिभूतवदुप-चार तस्तेषामपि तद्व्यपदेशोपपत्तेः। अथवा पृथिवीकायिक नाम कर्मोदय वशीकृताः पृथिविकायिकाः॥

अर्थः—पृथविरूप शरीरको पृथिवीकाय कहते हैं। वह जिस के पायाजाता है उन जीवोको पृथिवीकायिक कहते है। पृथिवी कायिका इस प्रकार लक्षण करने पर कार्मण काययोगमे स्थित जीवोंको पृथिवीकायपणा नहीं होसकता है यह बात नहीं है। क्योंकि जिस प्रकार जो कार्य अभी नहीं हुआ है। उसमे यह हो चुका इस प्रकार उपचार किया जाता है। उसी प्रकार कार्मण काययोगमे स्थित पृथिवीकायिक यह संज्ञा बन जाती है। अथवा जो जीव पृथिवीकायिक नामकर्मके उदयके वशवर्ती है। उन्हे पृथिवीकायिक कहते है।

श्री धवलामें पेज नं० १३६में साफ रीतिसे कायका लक्षण किया है देखो—तच्चयन हेतु कर्मणस्तत्रापिसत्वतस्तद्व्यपदेशस्य न्यायत्वात् अथवा आत्मप्रवृत्ति स्युपचित पुद्गल पिण्डः कायः। अत्रापि सदोषो न निवार्यते इति चेन्न, आत्मप्रवृत्युपचित कर्म पुद्गल पिंडस्य तत्र सत्वात्। आत्म प्रवृत्युप चित नो कर्म पुद्गल पिंडस्य तत्रासत्वान्न तस्य काय व्यपदेशः इति चेन्न तच्चयन हेतु कर्मणस्तत्रास्तित्वतस्तस्य तद्व्यपदेश सिद्धेः। उक्त च

अप्पप्पवुत्ति सचिद पोग्गलपिंडं वियाण कायेत्ति
सो जिणयदम्मि भणिओ पुढवी कायादयोसो दो॥

अर्थः—अथवा योगरूप आत्माकी प्रवृत्तिसे सचित हुये औदा-

रिकादि रूप पुद्गल पिंडको काय कहते हैं ।

शंका—कायका इस प्रकार लक्षण करने पर भी पहिले जो दोष दे आये हैं वह दूर नहीं होता है । अर्थात् इसतरह भी जीवके कार्मण काययोगरूप अवस्थामें अकायपणेकी प्राप्ति होती है ?

समाधान—ऐसा नहीं है, क्योंकि आत्माकी प्रवृत्तिसे संचित हुवे कर्मरूप पुद्गल पिंडका कार्मण काययोग अवस्थामें सद्भाव पाया जाता है । अर्थात् जिस समय आत्मा कार्मण काययोगकी अवस्थामें होता है । उस समय उसके ज्ञानावरणादि आठों कर्मों का सद्भाव रहता है । इसलिय इस अपेक्षासे उसके कायपना बनजाता है ।

शंका:—कार्मण काययोगरूप आत्माकी प्रवृत्तिसे संचयको प्राप्त हुए नोकर्म पुद्गल पिंडका असत्व होनेके कारण कार्मण काययोगमें स्थित जीवके काय यह व्यपदेश बन सकता नहीं ?

समाधान.—नोकर्म पुद्गलपिंडके संचयके कारणभूत कर्मका कार्मण काययोगरूप अवस्थामे सद्भाव होनेसे कार्मण काययोग में स्थित जीवके काय यह संज्ञा बन जाती है । कहा भी है ।

योगरूप आत्मा की प्रवृत्तिसे संचयको प्राप्त हुये औदारिकारूप पुद्गल पिंडको काय समझना चाहिये वह काय जिनमतमें पृथिवीकाय आदिक भेदसे छह प्रकारका कहागया है । और वे पृथिवी आदि छह काय त्रसकाय और स्थावरकायके भेदसे दो प्रकारके होते है ।

इस प्रकार काय जो है वह पुद्गल पिंड है। इससे युक्त जीवको पृथिवीकायिक कहते हैं। इनमें दोनों का भी समावेश होता है। केवल जीव शक्ति रूप कायमार्गणा नहीं है। इसलिये कायमार्गणा मुख्यतामें द्रव्यकी अपेक्षासे कथन है।

गुणस्थान मार्गणा, पर्याप्ति प्राण आदि केवल कायमे नहीं होते और केवल शुद्ध जीव मे भी नहीं होते दोनोके सम्बन्ध युक्त संसारी जीवोमें ही होते है इसलिये दोनोंका ही सापेक्षरूपसे मानना योग्य है। पं० जी केवल भावमें मानते है यह दोष है। आगे सूक्ष्म और बादर जीवोके गिनतीके प्रकरणके उद्धरणका विचार करते हैं।

वास्तविक पं० सोनीजी ने जो "अपज्जत्तणामकम्मोदयादि।" द्रव्य० प्र० पे० ३३१ का दिया है वह भी उपरोक्त आशयका ही दिया है। पर्याप्तमे निवृत्य पर्याप्तको ग्रहण करलेनेमें कहा है पर्याप्त नामकर्मोदय युक्त जीवोका ग्रहण करनेका कहा है। इसमे पं० जी क्या सब ही षट्खडागम मे भावात्मकका ही कथन किया है ऐसा समझा है वह बिलकुल गलत है। पडितजी अभी षट्खंडागम रहस्यको जाना नहीं है ऐसा कहने पर अतिशयोक्ति भी नहीं हो सकती है। पं० जी बेप्रकरण का बिना मतलबका उद्धरण करके पैरका चोटीमे और चोटीका पैरको सम्बन्ध लगाने का वृथा प्रयास किया उसके लिखानमे या उनके समझमे बिलकुल सार नहीं। इसी प्रकार बादर णामोदयादि उद्धरणका प्रकरण

सूत्र न० ३४ की वृत्तिमे किया है। उसका सार इतना ही है कि बादर और सूक्ष्म इनका लक्षण शरीरकी अवगाहनासे लेनेमे दोष आता है। क्योकि सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्यपर्याप्तक जघन्य अवगाहनासे लेकर उत्कृष्ट, अवगाहना तकके विकल्पों में मध्यमविकल्प, बादर कायोके जघन्य अवगाहनासे कुछ सूक्ष्मतामे अधिक है। इसलिये शरीर अवगाहनाके हिसाबसे सूक्ष्म और बादर ऐसा लक्षण न करके सूक्ष्म नामके उदयवाला जीव और बादर नामकर्म उदयवाला जीव ऐसा पद आनेसे सबही समझ बैठे हैं। आगे जाकर जब निर्णय पर आते हैं तब श्री धवलामें कहा है कि, "तस्मादप्यसंख्येयगुण हीनस्य बादर कर्म निर्वर्तितस्य शरीरस्योपलंभात्। कुतो अवसीयते इति चेद्वेदना क्षेत्रविधान सूत्रात्। तथा—बादर वणप्फदिका-इयपत्तेयसरीरपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्ज-गुणा। इत्यादिवचनोका कथन प० जी ने छोड़ा है वह जा-ण बूझ कर ही ऐसा मालूम पड़ता है क्योकि इन पंक्तियोंमें शरीर का भी वर्णन आया है। उसका उद्धरण करते थे तो सब लोगोंको यथार्थ परिस्थिति समझमें आती थी। लेकिन प० जी को अपना पक्ष सिद्ध करने का था इसलिये यथार्थरूप का लिखान नहीं किया। प० जी के सामने हम एक प्रश्न रखते हैं कि "जीवों के भावोमें अवगाहना छोटी बड़ी होती है या उनके शरीरोंमें छोटी बड़ी अवगाहना होती हे ? इसका खुलासा करो। फिर तुम्हारे लि-

खानसे तुम्हारा लिखित गलतका खंडन होगा। हमें लिखनेकी जरूरी भी नहीं रहेगी।

शरीर पर्याप्तिकी परिस्थिति

पं० सोनीजीने पर्याप्तिकी व्याप्ति शरीरके साथ न मान कर जीवके भावके साथ व्याप्ति घटानेका प्रयत्न किया है। वह प्रयत्न पं० जी का सफल नहीं हुआ है। प० जी यह कहो कि पर्याप्तिमें कारण पर्याप्ति और कार्यपर्याप्ति ये दो भेद होते है या नहीं। कारण पर्याप्ति जीवका विकारी भाव है तथापि उस भावमें आहार शरीरादिकोका कार्यभी जीवात्मक है या नहीं इसका विचार नहीं किया आहारादि कार्य जीव भावात्मक नहीं किंतु पुद्गल विपाकी पुद्गल स्कधोंके कार्य है इसलिये पर्याप्तिमें दो अवस्था होते हैं। एक जीवविपाकी दूसरी पुद्गलविपाकी (जीव शक्तिरूप कारण पर्याप्तिका कथन ही सर्व ग्रन्थभरमें मानोगे तो ठीक व्यवस्था नही बैठ सकती है ग्रंथमें कार्य पर्याप्तिका भी विशेष वर्णन किया है सो मेरे लेखमें दिखाया है, अब ९२ न० सूत्रमें जो पर्याप्ति अपर्याप्ति शब्दका आप स्पष्टीकरण करते समयमें कारण पर्याप्ति रूप जीव भावमें घटित कररहे हो तो उनमें बहुत दोष आते हैं वो दोष निराकरण किस तरहसे करोगे सो देखो। जीवभावमें अपर्याप्ति निवृत्त्यपर्याप्ति तथा पर्याप्ति ऐसे तीन भेद है या नहीं ऐसा प्रश्न होने पर आपके कथनानुसार नहीं है ऐसा

ही उत्तर आता है। क्योंकि भावरूप कारण पर्याप्ति में निवृत्य पर्याप्तिका अंतर्भूत किया है। उनका उद्धरण आप बहुत जगह में किया है। जैसे "एवं पज्जत्त वयणेण अपज्जत्त णामकम्मोदय सहिद जीवा घेतव्वा अण्णहा पज्जत्तणामकम्मोदय सहितणिव्वत्ति अपज्जताणंवि अपज्जत्त व यणेण गहणप्पसंगादो। एव पज्जत्ता इति वुत्ते पज्जत्त णाम कम्मोदय सहिद जीवा घेतव्वा, अण्णहा पज्जत्तणामकम्मोदय सहिद णिव्वत्ति अपज्जत्ताण गहणाणुववत्तीदो। द्र० प्र० पे० ३११ तथाच पे० न० ३३१ मे भी ऐमा ही प्रकरण आनेसे उनका भी उद्धरण किया है। इसका अर्थ:—यहां पर अपर्याप्त वचन से अपर्याप्त नामकर्मके उदयसे सहित जीवोंका ग्रहण करना चाहिये। नहीं तो अर्थात् अपर्याप्त शब्दका अर्थ अनिष्पन्न शरीर लिया जावेगा तो पर्याप्त नामकर्मोदयसे युक्त निवृत्य पर्याप्तक जीवोंके भी अपर्याप्त वचनसे ग्रहण करनेका प्रसग आवेगा। इसी प्रकार पर्याप्त ऐसा कहने पर पर्याप्त नामकर्मोदययुक्त जीवोंका ग्रहण करना चाहिये। नहीं तो अर्थात् पर्याप्तका अर्थ निष्पन्न शरीर करोगे तो पर्याप्त नामकर्मके उदयसे युक्त निर्वृत्य पर्याप्तक जीवोंका ग्रहण नहीं होगा तथाचोक्त

अपज्जणाम कम्मोदय सहिद पुढवीयादओ अपज्जत्ताति घेतव्वा ण अणिप्पण्ण सरीरा पज्जत्त णाम कम्मोदय अणिप्पण्ण सरीराणं पि गहणप्पसंगादो। तहा पज्जत्तणामकम्मोदय वंतो जीवा

पज्जत्ता अरणाहा णिप्पयण सरीर जीवाणमेव गहणप्पसंगो । द्र० प्र० पे० ३३१

अर्थात्—अपर्याप्त नामकर्मके उदयसे युक्त पृथिवीकायिकादि जीव अपर्याप्त कहते है ऐसा अर्थ करना चाहिये न कि अनिष्पन्न शरीर यह अर्थ । क्योंकि अपर्याप्त अनिष्पन्न शरीर ऐसा अर्थ करनेसे पर्याप्त नामकर्मके उदयसे युक्त अनिष्पन्न शरीरवाले (निर्वृत्य पर्याप्तक) भी ग्रहण करनेका प्रसग आवेगा । इत्यादि

इस प्रकार उपरोक्त उद्धरणको दिखाकर प० जी ने सूत्र ९२ वां की वृत्तिका भी अर्थ में बदलपणा किया है । और शरीरकी पूर्णताका अर्थ शरीर पर्याप्ति समझ लेना चाहिये ऐसा लिखा है। लेकिन मुझे इस विषयमें एक बातका खुलासा करना है कि, शरीर पर्याप्ति कारणरूप समझना या कार्यरूप समझना यह दो प्रश्न आते हैं । कारणरूप पर्याप्ति जीव भावरूप है, और कार्यरूप पर्याप्ति पुद्गल विपाकी स्कधोंकी रचनारूप द्रव्य शरीररूप होता है ऐसा साफ तरहसे श्री वीरसेनाचार्य ने धवलाके प्रथम सत्प्ररूपणा में किया है । इसलिये कार्यरूप शरीर पर्याप्ति पुद्गल विपाकी होनेसे सूत्र न० ९२ की वृत्तिमें भी टीकाकारने खुलासा किया है । देखो

"अत्रापि पूर्ववदपर्याप्तकानां पर्याप्त व्यवहार: प्रवर्तितव्य: अर्थात् यहांपर पर्याप्त मनुष्योंकी भांति अपर्याप्त मनुसिणीयोंके पर्याप्त व्यवहारका प्रवर्तन करना चाहिये । वाचक वृन्द यहांपर

जीवके भावरूप पर्याप्तकका विचार नहीं है क्योंकि यहांका प्रकरण पंचेद्रिय संज्ञी मणुसिणीका प्रकरण होनेसे अपर्याप्त शब्दका अर्थ निर्वृत्य पर्याप्तक करना चाहिये न कि लब्ध्य पर्याप्तक। कारण कि लब्ध्य पर्याप्तक जीवोंका कथन नहीं है। क्योंकि संमूर्छनमें स्त्रीवेदोदयका अभाव होनेसे वह प्रकरण यहां पर घटित नहीं होता इसलिये अपर्याप्तक शब्द निर्वृत्यपर्याप्तक शब्दका वाचक है इसलिये पर्याप्त विशेषण द्रव्य शरीरका विशेषण है। इससे यह सिद्ध होता है।

अपर्याप्ति और पर्याप्ति विशेषण ९२। ९३ सूत्रमें शरीर की अपेक्षासे है। भावकी अपेक्षासे नहीं है। यहा पर भावकी अपेक्षासे मानना गलत है। पर्याप्ति और अपर्याप्ति शरीर पर्याप्ति की पूर्णता और अपूर्णता है। शरीरकी पूर्णता ७।८.९ महिनेमें होती है ऐसा पं० जी आक्षेप दिया है। परंतु वह ठीक नहीं है शरीर पर्याप्तिका काल भी अन्तर्मुहूर्त कहा है। और सारे पर्याप्ति पूर्ण होनेका काल भी अंतर्मुहूर्त काल है इसलिये शरीरपर्याप्ति का काल भी दूसरा अंतर्मुहूर्त ही है। इस प्रकार माननेमें कोई दोष भी नहीं आता पडितजी ने जो शरीर पर्याप्तिका अर्थ ९ महिने के शरीरकी पूर्णता समझ रक्खा है वह यहां नहीं है— किंतु रसभागका रुधिरादिरूप और खलभागका हाड़ आदि रूप होना शरीर पर्याप्ति है।

अब विचारणीय एक बात है कि, वह शरीर द्रव्यस्त्री का या

द्रव्यपुरुषका ऐसा प्रश्न उठता है ? समाधान-यह शरीर द्रव्यस्त्री का ही है। क्योंकि यहापर वेदकी प्रधानता नहीं है ऐसा ९३ सूत्रकी वृत्तिमें साफ कहा है इसलिये पर्याप्त शब्द द्रव्यशरीरकी मुख्यता होनेसे मणुसी शब्दका अर्थ द्रव्यस्त्रीका ही होता है। इसलिये ९३ सूत्रमें सजद शब्द नहीं रहना चाहिये।

पं० सोनीजी अपने ट्रैक्टमें लिखते हैं कि, "षट्खण्डागमकार तो द्रव्यवेदके विषयमें मौन है। क्योंकि उनका सारा कथन आत्म परिणामोंकी प्रधानताको लिये हुवे है उसमें द्रव्यवेद अनपेक्षित है। द्रव्यवेदकी उदयसे आत्म परिणाम उत्पन्न नहीं होते है। और नहीं द्रव्य आत्माका कोई भाव है। तथा नहीं द्रव्यवेद में कोई स्वतत्र कार्यावली कही गयी है। इस उपरोक्त पं० जी के वचन देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ कि, प० जी ने अपने पक्षाधतासे श्री षट्खण्डागममें द्रव्य मणुसिणीका कथन नही मानकर बड़ा अनर्थ किया है। देखो प० जी ! मणुसिणीको द्रव्यस्त्रीके अर्थमे भी श्री षट्खडागमकार स्वय मणुसिणी शब्दका प्रयोग किया है। सूत्र न० ६८ से

पयणुसगदीए मणुस मणुस्सपज्जत्त मणुसिणीसु मिच्छा इट्ठि केवचिर कालादो होंति, णाणा जीव पडुच्च सव्वद्धा ॥६८॥ एक जीवं पडुच्चजहण्णेण अनोमुहुत्त ॥६९॥ उक्कस्सेण तिण्णि-पलिदोवमाणि पुव्व कोडी पुधत्तेणब्भ हियाणि ॥७०॥

अर्थ:—एक जीवकी अपेक्षा तीनों प्रकार के (मणुष्य, मनु-

ष्य पर्याप्त और मणुसिणी इनके) मिथ्यादृष्टि मनुष्योंका उत्कृष्ट काल पूर्व कोटी पृथक्त्वसे अधिक तीन पल्य है। इस प्रकार मनुसिणी का अर्थ श्री षट्खंडागमकारका अभिप्राय तीन पल्य और सात पुर्व्वकोटि वर्ष अधिक वाली मणुसिणी द्रव्य स्त्री है या भाव स्त्री है। इसका खुलासा करें यदि कहोगे कि भाववेदकी अपेक्षासे कथन है तो भी तीन पल्य आयुवाली स्त्री साम्यवेदी उत्तर कुरुभोग भूमि वाली द्रव्यस्त्री है। ऐसा आबाल गोपालको मालुम है। इस बच्चे कच्चे जानने वाली बातको भी प. सोनीजी नहीं जानते है यही उनकी स्पष्ट पक्षांधता है। उसी तरह और भी अनेक सूत्रोका उद्धरण करता हूं।

असंयत सम्यग्दृष्टि का काल प्रमाण कहते हैं।

"उक्कस्सेण तिण्णिपलि दोवमाणि, तिण्णिपलिदोवमाणि, सादिरेयणि, तिण्णि पलि दोवमाणि देसूणाणि ॥८१॥ सूत्र

अर्थात् तीनो प्रकारके असंयत सम्यग्दृष्टि मणुष्योका यथा क्रमसे उत्कृष्ट काल तीन पल्योपम, तीन पल्योपम सातिरेक और देशोन तीन पल्योपम है। तथा धवलाटीकामें भी कहा है। मणुसि-नीयोमें देशोन तीन पल्योपम उत्कृष्ट काल है वह इस प्रकार है। मोहकर्म की अट्ठावीस प्रकृतियोंकी सत्ता रखनेवाला कोई एक मि-थ्या दृष्टि मनुष्यनी तीन पल्योपमकी आयुवाली भोगभूमि या मणु सिणीयोंमे उत्पन्न होकर और ९ मास गर्भमें रहकर निकला हुआ उत्तान शय्या पर अगुष्ट चूसने रूप आहारसे सात दिन, रेगते

हुये सात दिन, अस्थिर गमनसे सात दिन, स्थिर गमनसे सात दिन कलाओंमें सात दिन, गुणोंमें सात दिन तथा अन्य भी सात दिन बिताकर विशुद्ध होकरके सम्यक्त्वको प्राप्त हो अपनी आयुस्थिति प्रमाण जीवित रहकर देवोंमें उत्पन्न हुये जीवके ४९ उन्चास दिवसोंसे अधिक नवमासोंसे कम तीन पल्योपम काल पाया जाता है। पेज न० १७६ पु० न० ४

अब यहांपर सूत्रस्थ मणुसिणी शब्दका अर्थ तथा श्री भगवद्वीर सेनाचार्यके टीकाके मणुसिणी पद द्रव्य शरीर सह है या द्रव्य शरीर रहित मणुसिणी है। तथा वह साम्यवेदी है या वेद वैषम्य वाली है, यह पं० जी सोनी को दिखाना जरूरी है लेकिन जब पक्षपात है तब कौन दिखानेमें समर्थ होगा ? यह वाचक वृन्दही विचार करें।

तथा मणुसिनीका मिथ्यात्वका अंतरकाल कहते हैं सो भी देखिये। मणुसगदीए मणुस मणुस्स पज्जत्त मणुसिणीसु मिच्छा दिट्ठिणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणा जीव पडुच्चणत्थि अंतरं णिरंतरं ॥५७॥ एक जीवं पडुच्च जहण्णेण अंतो मुहुत्तं ॥५८॥ उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोव माणि देसूणाणि ॥५९॥

अर्थः—मणुसिका मिथ्यात्वका अंतरकाल देशोन तीन पल्योपम है। उसका स्पष्टीकरण "एगूणवण्ण दिवसब्भहियणवहि मासेहि बे अन्तो मुहुत्तेहिय उणाणि तिण्णि पलिदोवमाणिमिच्छत्तु-

कस्संतरं जाद। एवं मणुस पज्जत्त मणुसिणीसु वत्तव्वं, भेदा भावा। पे० नं० ४७ पुस्तक न ५

अर्थात् उनचास दिनोंसे अधिक नौमास और दो अन्तर्मुहुर्तों से कम तीन पल्योपम सामान्य मनुष्यके मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अन्तर होता है इसी प्रकारसे मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियोंमें अन्तर कहना चाहिये क्योंकि, इनसे उनमें कोई भेद नहीं है। उसी तरह सूत्र न० ६३ में भी सासादनका तथा सम्यग्मिथ्यात्व भी उत्कृष्ट अनर भी तीन पल्योपमसे कुछ अधिक है। सो सूत्रकी वृत्तिमें भी देखो। 'मणुसिणी सु सत्त पूव्व कोडि ओतिसुपलिदोयमेसु अहिया ओति वक्तव्वं। अर्थात् मणुष्यनीयोंमें सात पूर्व कोटियां तीन पल्योपमोमें अधिक कहना चाहिये। उसी तरह सूत्र नं ६६ में भी देखो। तीन पल्योपम आयु वाली मणुसिनी क्या आपके समझे हुये भाव मणुसिणी (वैदवैषम्य वाली हैं क्या) है क्या? सो सोनीजी विचार करके उसका स्पष्टीकरण जरूर करना चाहिये कि श्री षट्खंडागममे द्रव्यस्त्री का कथन नहीं है या है? या तीन पल्योपम वर्ष आयु वाली स्त्री द्रव्यस्त्री है या भाव स्त्री (आपके माने हुये द्रव्यपुरुष और भावस्त्री) इसका भी स्पष्टीकरण करना चाहिये।

प० जी! और एक बातकी खुलासा करो कि द्रव्यस्त्रीमें भी भावस्त्री तथा द्रव्य नपुसको में भी भावस्त्री है या नहीं तथा द्रव्यस्त्रीमें भावपुरुष भाव नपुसक है या नहीं? तथा द्रव्यनपुसकमें भी भावपुरुष भावस्त्री भाव नपुंसक है

उनको भी मणुसिणी शब्दका निषेध किस तरहसे करोगे। क्यो स्त्री वेद की मुख्यतासे कहोगे तो वहांपर भी स्त्रीवेद की मुख्यता है। फिर मणुसिणी कहनेका निषेध किस तरह करोगे। तथा द्रव्यपुरुषगत स्त्रीवेदके उदयसे युक्त भाववेदोदयकी अपेक्षासे मनुसिणीभी क्यों कहते हो? क्योंकि आपका कहना है कि द्रव्य शरीरका कथनही सारा षट्खंडागममें नहीं है तो फिर किस वचनता से आप द्रव्यपुरुष और भावस्त्रीके उदयसे मनुसिणी कहते है ऐसा सिद्ध करोगे। इस प्रकार आप पूर्वापर विरोध वचन कहरहे हैं तथा आपके वचनसे ही आपके वचनका निराकरण होनेसे स्ववचन बाधितपना आरहा है उसे दूर करनेके लिये श्री षट्खंडागममें द्रव्य का भी कथन है ऐसा स्याद्वाद वचनका शरण लेना पड़ेगा ही। इसलिये सीधे द्रव्यभाव दोनका भी कथनसे युक्त श्री षट्खंडागम है ऐसा मानो और एकांतपणाका त्याग करो।

❁ द्वितीय प्रकरणं समाप्तं ❁

प्रकरण ३

मणुसिणी शब्द पर विचार

पं० जी कहते हैं कि, "द्रव्यवेदके विषयमें श्री षट्खण्डागम-कार मौन हैं। क्योंकि, उनका सारा कथन आत्म परिणामों की प्रधानताको लिये है। उसमें द्रव्यवेद अनपेक्षित है। द्रव्यवेदके उदयसे आत्मपरिणाम उत्पन्न नहीं होते हैं। और नहीं द्रव्यवेद आत्माका कोई भाव है। तथा नहीं द्रव्यवेदमें कोई स्वतन्त्र कार्या-वली कही गयी है।

इस प्रकारके प० जी के वचन पर विचार करते हैं, वास्त-विक पं० जी का यह लिखाण सत्य स्वरूपको नहीं पहुचता है। क्योंकि द्रव्य वेदके विना भाववेद नही होता यह त्रिकाल सत्व है चाहे वह द्रव्यवेद चारित्र मोहनीय नो कषायरूप मानो या शरीरा-श्रित लिंगरूप मानो दोनोभी मानने की जरूरी है। क्योंकि चारित्रमोहनीय नो कषाय भाववेदकी उत्पत्ति, द्रव्य पुद्गल स्कंध रूप कार्मण वर्गणाके विना होसकती नहीं। यदि कार्मण वर्गणाके विना भी भाववेद होता है ऐसा माननेपर यह भाववेदको पारिणामिक

भाव मानना पड़ेगा या उस भाववेदको आत्माका स्वभाव मानना पड़ेगा यदि आत्माका स्वभाव या पारिणामिक भाव मानोगे तो सिद्ध जीवोंमें भी भाववेदकी सिद्धि माननेका प्रसंग आवेगा। यह आप लोग स्वीकार करते हो या नो कषाय कर्मवर्गणा स्कन्ध रूप द्रव्यकर्म का उदय मानते हो ? दोनोंमें से एक कोईना कोई मानना ही पड़ेगा। यदि चारित्र मोहनीय नोकषाय उत्पादक द्रव्य कार्मण स्कंधरूप द्रव्यवेदका उदय मानोगे तो भी अच्छा है। क्योंकि, वह द्रव्य कर्म वेद का उदय विग्रहगतिको छोड़कर अन्यकाल में बिना शरीरके उदय नहीं होता है। शरीरके बिना कर्मका भी उदय नहीं होता है। तथा शरीर नोकर्म है और कर्म कार्मण है। कर्म नोकर्मके बिना उदय मानोगे तो शरीर न रहते हुये विग्रहगतिमें भी १४ गुणस्थानोका होना मान्य होना चाहिये। लेकिन आप इसके बिना विचारे स्वीकार कैसे करोगे ? नहीं, विचार करके कहोगे कि अपर्याप्तावस्थामें १४ गुणस्थान माना नहीं इसे आप ही हर्षके साथ ही शरीरके बिना विग्रहगति को छोड़कर वेदका उदय नहीं मान सकते हैं। तथा आचार्यों ने भी विग्रहगतिमें उदय मानते हुये भी अव्यक्त उदय माना है। देखो धवला टीका पे० न १०७ विग्रहगतौ २ न वेदा भावस्तत्रापि अव्यक्त वेदस्य सत्वात् ॥ इसलिये शरीरके साथ ही भाववेदका कार्य होगा शरीरके बिना कार्यरूप नहीं परिणत होता है। यह भी ध्यानमें रखना जरूरी है। इस प्रकारके कथनको देखकर कोणसा बुद्धिमान पुरुष श्री षट्खण्डागममे द्रव्यशरीरका वर्णन

नहीं है ऐसा कहनेका साहस करेगा ! क्या पांचवे गुणस्थानसे १४ गुणस्थान तकके गुणस्थान बिगर शरीरके होसकते हैं ? हो सकते तो प्रमाण साबूत देकर कथन करना चाहिये था । लेकिन कई लोग श्री षट्खंडागममे द्रव्य शरीर का वर्णन नहीं है केवल भावका ही कथन है ऐसा मनगढंत कल्पनासे वे अपने घोड़े अंट-मट दौड़ारहे है । इसका नाम केवल भाववेदकी सिद्धि नहीं है द्रव्य और भाव इन दोनोंकी सिद्धि आचार्यप्रवर भगवान पुष्पदंत भूतवलि ने किया है । यदि श्री षट्खण्डागमकार केवल भाव की अपेक्षासे कथन करते थे । तो मणुसपज्जत्तामे तथा सामान्य मणुस्सामे मणुसिणी गर्भित नहीं होसकती थी ? होती है क्या अपज्जत्त मणुष्य संमूर्छनमें मणुसिणी सिद्ध कर सकते हो ? क्या संमूर्छन जीवोमे स्त्रीवेदका उदय मानते हो तो प्रमाण दिखावो । यदि कारणरूप भावापेक्षासे कथन मानने पर पर्याप्तमें निवृत्य पर्याप्तकोका अतर्भूत आचार्योंने नहीं किया है ? जरूर किया है तथा सूत्र न० ९२ में जो पर्याप्त अपर्याप्त विशेषण मणुसी को लगाया है । वह कारणरूप भावापेक्षासे मानोगे तो अपर्याप्तको लब्ध्य पर्याप्तक मानते हैं ? यदि मानते हो तो ऐसा स्पष्ट करदेना कि लब्ध्य पर्याप्तक में भी स्त्रीवेदका उदय होता है । ताकि आपका श्री षट्खण्डागमका रहस्य अच्छी तरह प्रगट होजायगा । क्योकि पर्याप्तमें निर्वृत्य पर्याप्तकोंका अन्तर्भूत होजाता है । अतः अपर्याप्त पदका अर्थ लब्ध्यपर्याप्तक ही रह जाता है इसलिये सूत्र

नं० १२ में आया हुआ अपर्याप्तका अर्थ सीधा तुम्हारे कथनसे विरुद्ध पड़ता है वह तुम्हारे कथित विषयोंको निर्मूल करके पर्याप्त और अपर्याप्त शरीरका ही विशेषण सिद्ध होता है। न भावका। द्रव्य लिंग स्वरूप शरीरांगांगका तथा भाववेदका कार्यकारणरूप संबन्ध आचार्योंने नहीं माना है यह सत्य है। तथा इसे हम भी सहर्ष स्वीकार करते हैं। तथा द्रव्य लिंगरूप शरीरांगोपांगका और भाववेदका सहयोग संबन्ध भी श्री गोम्मटसारकी बड़ी संस्कृत टीकामें अवश्य माना है। अपर्याप्तावस्थामें जिस तरहका भाववेद का उदय हो उसीके अनुसार द्रव्यलिंग रूप अंगोपांग बनते हैं। इसका विस्तारके साथ खुलासा किया है। इसलिये आपको यह मानना चाहिये कि अपर्याप्तावस्थामें वेद वैषम्य होता नहीं। क्योंकि शरीरांगोपांग बनानेमें भाववेदका सहयोग संबन्ध होता है। यदि सहयोग संबन्ध नहीं मानोगे तो आगे बहुत दोष आते हैं। क्योंकि वेदका उदय सर्वांगमें होता है इसका कारण वेद चारित्र मोहनीय नोकषायरूप होनेसे वह उदय सर्वांगमें आता है तथा क्षयोपशम भी सर्वांगमें होते हैं। तथा पुंवेदवाले जीवको वीर्योत्पादक शक्तिको निमित्त भूत बीज कोष या अंडकोष निर्माण को निमित्त भूत पुंवेदका उदय ही चाहिये। तथा स्त्रीवेदके उदय में रजोत्पादक रज कोष अंगोपांग को सहाय मिलता है। तथा नपुंसक वेदोदयमें बीजकोष तथा रजकोषका निर्माण नहीं होता दोनों अगरहित नपुंसक रूप अंगोपांगका निर्माण होना न्याय है

यदि इन विषयको छोड़कर अपर्याप्तावस्थामे स्त्रीवेदका उदय और बीज कोषोका निर्माण तथा शिश्नादि अंगोपांग किस तरहसे बन सकेंगे ? नहीं । इसलिये अपर्याप्तावस्थामें वेदकी साम्यताही मानना जरूरी। है इस प्रकरणको श्री गोम्मटसार की टीकामें खुलासा है। वह क्या प्रमाणभूत नहीं है ? जरूर है।

अब भाववेदकी कार्यावलीमें विचार करते हैं। भावकी अपेक्षा से स्त्री वेदकी उदयमे पुरुषाभिलाषा उत्पन्न होता न कि स्त्री भोगनेकी इच्छा ? क्योकि, स्त्रीवेदका उदयसे पुरुषके साथ रमण करनेकी अभिलाषा उत्पन्न होती है। इसका कार्यभी जब द्रव्यलिंग स्वरूप योनि हो। तब ही वह पुरुषोके साथ रमण करनेकी अभिलाष। होगी। तथा पुंवेदके उदयसे शिश्नामें उत्थापन शक्ति होने पर स्त्रियोके साथ रमण करनेकी इच्छा होती है। और वीर्य-विमोचनादि कार्य होता है। स्त्री वेदोदयमें वीर्य विमोचन कार्य नहीं होता है। इसलिये अपर्याप्तावस्थामें पुंवेदके उदयके बिना वीर्योत्पादक बीज कोषादिकोंका होना युक्तियुक्त नहीं होता है। इसकारण अपर्याप्ता-वस्थामे वेद वैषम्यता बन ही नहीं सकती। यदि वेद वैषम्य बन जाता है। शरीरांगोपांगका रचना कार्य केवल नामकर्मके आधीन है। और चारित्र मोहरूप वेदका कार्य इनको कोई सहयोग संबन्ध नहीं मानोगे तो एक महान दोष आता है कि, शरीरांगोपांग आदि अघाति नामकर्म स्वरूप है। और घाति कर्म स्वरूप वेदोदय है। दोनोंमे परस्पर निमित्तभूत सहयोग नहीं मानने पर द्रव्यस्त्री को अनायास ही मुक्ति प्राप्त होनेका अधिकार प्राप्त होता है।

क्योंकि वेदका उदय श्रेणी चढ़नेमें विघातक नहीं है। तथा चाहे उपशम श्रेणी चढ़नेमें या क्षपक श्रेणी चढ़नेमे वेद कभी भी बाधक नहीं है। और शरीर नामकर्मरूप है उस अघाति कर्मोदय से आत्माके चेतनगुणका घात करनेके सामर्थ्यसे हीन होनेसे ज्ञानादि गुणोद्घाटनमें विघात नहीं होसकते इसलिये द्रव्यस्त्री को मुक्ति को निषेध करने वाला कौणसा कर्म है? कहोगे कि, वज्रवृषभ नाराच संहनन स्त्रियोको नहीं होनेसे मुक्तिका निषेध कर सकते हैं। तो यह युक्तिभी युक्त नहीं है क्योंकि कर्मभूमिमें जिस अपर्याप्तावस्थामें स्त्रीवेदका उदय होते हुये भी वज्रवृषभ सहनन पुरुषको बन सकता है तो अपर्याप्तावस्थामें समवेदी द्रव्यस्त्री को भी अपर्याप्तावस्था मे वज्रवृषभादि संहनन प्राप्त होनेमें विरोधक कौण हो सकता है? कोई भी नहीं! ऐसी आपत्तिको दूर किस तरहसे करोगे? तथा द्रव्यस्त्रीको अपर्याप्तावस्थामें पुंवेदका उदय हो ऐसी अवस्थामें वज्रवृषभ नाराच संहनन का होना द्रव्यस्त्रीको न्याय होता है। इसका विरोधक कौण है? इस प्रकार अपर्याप्तावस्था में वेद वैषम्य मानने पर अनेक दोष आते हैं उनका निराकरण भावपक्षी विद्वान किस मुहसे करेंगे? जिस तरह स्त्रीवेदके साथ अपर्याप्तावस्थामे सम्यक्त्वका विरोध है उसी तरह स्त्रीवेदके साथ वज्रवृषभ नाराच संहननका भी विरोध है। देखो बन्ध स्वामि-प्रकरणमे तथा महाबन्ध में स्त्रीवेदके साथ वज्रवृषभ संहननका बंध नहीं होता। इसलिये अपर्याप्तावस्थामे श्री गोम्मटसारमें जो सम-

वेद माना है। तथा वेद वैषम्यता का निषेध तृतीय विभक्तिके साथ सहयोग संबन्ध मान करके कर दिया। वह विचार करके देखना जरूरी है।

अब जब तक श्री षट्खण्डागममें द्रव्यशरीर वर्णन करने की मान्यता स्वीकार नहीं करोगे ? तबतक वेद परिवर्तन भी तुमसे नहीं सिद्ध होता है। तबतक प० सोनीजीके मान्यताके समान मणुसिणीका अर्थ भी नहीं कर सकते हैं। क्योंकि प० सोनीजी का कथन है कि सारे षट्खण्डागम में द्रव्य कथन न होकर भा-वका ही कथन है ऐसे लिखान करते समय पं० जी अपनी प्रतिज्ञा वाक्यको भूलकर ही मणुसिणीका द्रव्य शरीर पुरुषका होता है ऐसा लिखा है। क्योंकि प० जी ! कायमार्गणा भावका ही कथन करने वाला है। तब आप मेहनादियुक्त पुरुष चिन्ह सह शरीर मणुसिणीका होता है ऐसा किस तरह लिखाण किया ? सो प० जी जाने। प० जी को यह भी खबर नहीं रहा कि, मै क्या लिखरहा हू। पहिले क्या लिखा है। १४ मार्गणा भावकी अपेक्षासे है। ऐसा बड़े जोरके साथ लिख चुके हैं। फिर किस सूत्रमें मणुसिणीका शरीर पुरुषाकार होता है। ऐसी खसबू आ-या सो प० जी आपही प्रगट करे ; आपने जो स्त्रीवेदी जीव द्रव्यसे पुरुषाकार माना है। वह आपके मनगढंत कल्पना परसे ही मालुम होता है। आपने जो उद्धरण दिया है। उससे सिद्ध करनेको तैयार हो सकते हो 'एक जीवं पडुच्च जहण्णेण अंतो-

मुहुत्तं, उक्कस्सेण पलिदोवससद पुधत्त ॥१८६॥

अर्थ:—एक जीवके प्रति जघन्यसे अन्तर्मुहुर्त और उत्कृष्ट से पल्योपमशत प्रथक्त्व है। अन्तरकाल है। आप यह स्त्रीवेद वाला जीव ज्यादासे ज्यादा परिभ्रमण करनेवालेका उदाहरण दिया है। और उसमें भी कोई एक अन्यवेदी जीव स्त्री वेदी मनुष्योंमे उत्पन्न हुआ। गर्भसे आदि लेकर ८ वर्ष तक मिथ्यात्वी रहा था इस पंक्तिमें तो २८ मोह की सत्तावाला अन्य वेदी जीव, ऐसा स्पष्ट लिखा है वह अन्यवेदी जीव स्त्री वेदीसे अन्यवेदी अर्थात् पुंवेदी जीव जो कि आगे पुवेदी होनेवाला हो। ऐसे अपर्याप्ता वस्थामें पुवेदी था। इसलिये पुरुष शरीरका उत्पन्न होगया था। ऐसा अर्थ निकलता है। नही तो अन्यवेदी पद निरर्थक ठहरता है। जो विग्रहगतिमें वेदोदय होता है वही अपर्याप्तावस्थामें रहता है। विग्रहगतिमें अन्यवेदी साफ लिखा है। इससे आपका मंतव्य सिद्ध होता नहीं। अन्यथा अपर्याप्तावस्थामे स्त्रीवेदके साथ वज्रवृषभ नाराच संहननका भी उदय माननेका प्रसंग आवेगा। ऐसा मानने पर साम्यवेदी स्त्रीको भी वज्रवृषभ नाराच संहनन का उदय भी मानना पड़ेगा। इस आपत्तिको दूर करनेको आपके पास क्या प्रमाण है? जो प्रमाण हो तो वही प्रमाण दि० आम्नाय का घात करके श्वेतांबर मतका कथन करनेवाला होजायगा। क्योंकि, दि० आम्नायमें अपर्याप्तावस्थामे भाववेद तथा द्रव्यशरीर इनमे साम्यता मानते हुए निर्वृत्यपर्याप्तक कर्मभूमि स्त्री वेदीको

उत्तम संहनन का अभाव बताया है। और उस उत्तम संहननके अभावमें ही द्रव्य स्त्रीयोका मुक्तीका निषेध किया है। इस बातको आप भूल जावोगे तो बहुत अनर्थ परंपरा से युक्त होके सिद्धान्तकी व्यवस्था नहीं बिठा सकोगे, स्त्रीवेद के साथ अपर्याप्तावस्थामें द्रव्य शरीरका कोई सह भाव संबन्ध नहीं मानोगे तो द्रव्यस्त्रीको निषेध भी नहीं कर सकोगे ? क्यों कि दि० आम्नायमें संहननके अभाव से ही द्रव्य स्त्रीको मुक्ति का निषेध करते आ रहे हैं। दोनोंका संबन्ध नहीं मानोगे। तो स्त्रीवेद शुक्ल ध्यान का घातक नही क्षपकश्रेणीका घातक नहीं। तथा शरीर नाम कर्म जनित होनेसे वह अघाति कर्म जन्य है। वह अघाति कर्म जनित उत्तम संहननका आप सद्भाव मान रहे हो। यह महान दोषोत्पाद है। तथा अघातिकर्म जनित शरीर घाति कर्मोंको रोक नहीं सकता। उसको रोकनेका सामर्थ्य ही शरीर में नहीं है। इसलिये आपकी अपर्याप्तावस्थामें वेद वैषम्यकी मान्यता गलत है। इसलिये मणुसिणी द्रव्यस्त्री भी होती है। तथा योनिस्तन जघनादि द्रव्य लिंगोंसे चिन्हित भी है। तथा श्री षट्खण्डागम कथित तीन पल्योपम वर्ष आयु वाली मणुसिणी योन्यांकित शरीर वाली है।

श्री षट् खण्डागममें सू० नं० १२-१३ द्रव्यानुयोग में सूत्र नं० ४८ में कालानुयोगमें ७०-८१ अंतरानुगमे ५९-६६ इत्यादि सूत्रमें द्रव्यस्त्रीके अर्थमें मणुसिणी शब्दका प्रयोग किया है। तथा अन्यत्र भावस्त्रीका कथन है।

आप भाव पक्षी विद्वान् लोग जब तक श्री षट् खण्डागममें द्रव्य पर्याप्ति द्रव्य शरीर द्रवेंद्रिय, नाम कर्म जनित जातिनाम कर्म जनित गति । तथा अघाति कर्म जनित मार्गणाये द्रव्यका कथन करने वाले नही मानते हैं । तथा घाति कर्मोदय जनित मार्गणामें भावरूप मानते नहीं । तथा योगलेश्या आहार इनको दोनोंकी संयोगतासे नहीं मानोगे । तथा सब कथन भावापेक्षा मे ऐसा हठाग्रह करोगे तब तक आप वेद वैषम्यकी सिद्धि नहीं करोगे । चाहे वेद वैषम्यके लिये पुरुषके द्रव्य शरीर भी नहीं मानोगे वेद वैषम्यकी सिद्धि भी कैसे करोगे ? तथा जब द्रव्य पुरुषका शरीर मानोगे तो द्रव्यस्त्री का भी शरीर मानना पड़ेगा । तथा द्रव्यस्त्री के पांच गुणस्थानों का नियामक सूत्र का अस्तित्व सत्प्ररूपणामें नहीं मानोगे तो आगे के संख्यादि प्ररूपणामे जो सूत्र आये हैं, उनका यथार्थ स्वरूप भी नहीं समझोगे इसलिये अपना हठाग्रहको छोड़कर सीधे रास्ते में (दि० आम्नायके परं-परामें) आवो और उसी दि० आम्नायको अनुसरण रखो इसी मे अपना हित है ।

❀ इति तृतीय प्रकरणं समाप्तम् ❀

प्रकरण ४

वेद परिवर्तन पर विचार

पं० जी लिखने हैं कि, एक जन्म तक एक ही भाववेदका उदय रहता है यह भी कथन ठीक नहीं है। क्योंकि, श्री धवला मे इस बात की पुष्टि नहीं मिलती इसके विपरीत प्रमाण मिलता है। देखो पु० नं० १ में पे० न० ३४३ सू० नं० १०२ टीका में:—

उभयोर्वेदयोरक्रमेणैकस्मिन् प्राणिनि सत्वं प्राप्नोति। इति चेन्न, विरुद्धयोरक्रमेणैकस्मिन् सत्व विरोधात् कथ पुनः तत्र सत्व मिति चेत् भिन्न जीव द्रव्याधार तथा। पर्यायेणैकजीव द्रव्याधार तथा च। अर्थ शंका—दोनों वेदोंका अक्रमसे (युगपत्) एक जीवमें सत्व प्राप्त होता है। समाधान—ऐसा कहना ठीक नहीं विरुद्ध दोनों वेदोंका युगपत् एक प्राणिमें सत्व रहना विरोध है। शंका—फिर एक जीवमें उनका अस्तित्व कैसे? समाधान—भिन्न जीव द्रव्योंके आधारसे सत्व विरोधको प्राप्त होता नहीं। तथा एक

जीव में भी पर्यायकी अपेक्षा कालभेदसे अनेक वेद पाये जासकते हैं। (हिन्दी टीका)

इस तरहसे श्री धवलामें एक जीवमें कालभेदसे एक प्राणी में अनेक वेद पाये जाते हैं। इसमें विरोध नहीं है।

शंका—कषायके समान अन्तर्मुहूर्तमें बदलने वाले नहीं है। वेद तो जन्मसे मरण तक एक ही रहता है। यथा कहा है। "कषाय वन्नान्तर्मुहुर्तस्थायिनो वेदा., आजन्मनः आमरणात्तदुदयस्य सत्वात्—

समाधानः- उस उपरोक्त पङ्क्तीका पूरा प्रकरण लेना चाहिये जो कि, ऐसा है "त्रयाणां वेदाना क्रमेणैव प्रवृत्तिः ना क्रमेण पर्यायत्वात्। कषायवन्नान्तर्मुहुर्त स्थायिनो वेदाः आजन्मन. आमरणान्तात् तदुदयस्य सत्वात्।"

अर्थः- तीनों वेदोंकी प्रवृत्ति क्रमसे होती है। न अक्रम से। पर्याय होनेसे क्रमसे ही प्रवृत्ति होती है। कषायके समान वेद अंतर्मुहुर्त तक रहने वाले नहीं है। वेद जन्मसे लेकर मरण तक उनका उदयका सत्व है।

इन उपरोक्त पक्तियोंका अर्थ यह है कि, एक जीवमें युगपत् वेदोंकी प्रवृत्ति नहीं है। वे वेद पर्याय होनेके क्रमसे एक जीवमें भी प्रवृत्ति दीखती है। क्योंकि, यहांपर यह पर्याय भाववेदका समझना या द्रव्यवेदका समझना ऐसा प्रश्न होता है। भाववेद की अपेक्षा रूप पर्याय मानोगे तो वह भाववेद कषायरूप है भा-

त्मक होनेसे वह अर्थ पर्याय रूप है। वह व्यंजन पर्याय नहीं है। अर्थ पर्याय रूप भाववेद को कषाय नामसे ही कहते हैं। और व्यंजन पर्यायरूप द्रव्यवेदको कषायनामसे पुकारते नहीं। इसलिये यह सिद्ध होता है कि भाववेद अंतर्मुहूर्त स्थायी भी है। क्योंकि वेदके कालस्थितिमें पुंवेदका जघन्य काल प्रमाण अंतर्मुहूर्त प्रमाण है और स्त्रीवेदका जघन्यकाल प्रमाण एक समय मात्र है।

इस तरह भाववेदको ही कषाय कहते हुये अंतर्मुहुर्त में भी बदलते हैं। इसलिये भाववेदका उदय मणुष्य और तिर्यंचगतियों में एक ही भवमें भी बदलते रहते हैं। यदि बदलते नहीं होते तो त्रयाणां वेदानां क्रमेणैवप्रवृत्ति. इत्यादि पंक्ति लिख सकते नहीं थे। अब चारों गतियोंमे भी द्रव्य वेद (लिंग) बदलता नहीं। आजन्मसे लेकर आमरण तक रहता है। यह कथन द्रव्य लिंगकी अपेक्षासे तो ठीक बैठता है। भावकी अपेक्षासे नहीं। यदि भावकी अपेक्षा जंन्मसे लेकर मरण तक ही उदय माना जाय तो विग्रहगतिमे भाववेदका उदय नहीं माननेका प्रसंग आता है इसलिये भाववेदका उदय जन्मसे पहिले ही उदयमे आता है। चाहे वह अव्यक्तरूप भी क्यों न हो तो भी विग्रहगतिमें भाववेदका उदय है। इसलिये अविग्रहगतिमे आमरण तक ऐसा कहा होता तो निःसंदेह कह सकते थे। तथा श्री धवलाका१ १०२ सूत्र की वृत्तिमें भी एकस्मिन् प्राणिणि, शब्द रखकर शका उठाते हुये एक प्राणिमें कालभेदसे क्रमसे वेदका सत्व रहता है क्योंकि पर्याय होने

से ऐसा कहते हुये साफ सिद्ध किया है। एक भवमे एक ही उदय भोगभूमि, देव, नरकने सर्वथा तथा कर्मभूमि मनुष्य तिर्यंच मे रह भी सकते हैं। क्योंकि सामान्यरूपसे तिर्यंच गतिके वेदके उदयकी अपेक्षासे कथन किया है। उस समय वेदकी स्थिति कहा है (तथा कचित् बदलता भी है। ऐसा भी कहा है। दोनो भी मान्यताये सत्य है। वेद वैषम्यकी अपेक्षामे बदलते है। वेद साम्यताकी अपेक्षासे एक भवमे बदलते भी नहीं यदि बदलते हैं तो पर्याप्त दशामें ही बदलते हैं। जैसा कि कहा है कि,

पुंवेद वेदता जेपुरिसा खवग सेढिमारुढा,
सेसोदयेणाविनहाज्झाणुवजुत्ताय तेदु सिभ्झति।

टीका:—पुवेद वेदता जेपुरिसा खवग सेढी मारुढा। भाव पुवेद अनुभवंतो ये पुरुषाः क्षपक श्रेणिमारुढाः न केवल भावपुवेदेनैव अपितु सेसोदयेण वितहा स्त्रभिलाष रूप भावस्त्री नपुसक वेदेदयेनापि तथा क्षपक श्रेण्यारूढ प्रकारेण। उझाणुव-जुत्ताय शुक्ल ध्यानोपयुक्ताश्च ते द्रव्यपुवेदास्तु सिज्झति सिध्यंति।

अर्थ—भावपुवेदका अनुभव लेने वाले जे पुरुष हैं। वे क्षपक श्रेणीपर आरोहण करते है। उनही द्रव्यवेदी पुरुषोको भावस्त्री वेद या नपुसकवेदका भी उदय होने पर भी शुक्ल ध्यान युक्त होते हुये भी सिद्धिके प्राप्त करते है। इस गाथामे एक ही जीवमे भावसे तीनों वेदोका होना ध्वनित होता है तथा इसी गाथा पर गोम्मटसारकी टीकाकारनेभी अपना अभिप्राय प्रगट किया है। देखो-

"कृत द्रव्य पुरुषस्य क्षपक श्रेण्यारूढ़ानिवृत्ति करण सवेद भाग पर्यंत वेदत्रयस्य परमागमे 'सेसोदयेनवितहाज्झाणुवजुत्ताय तेदु सिज्झति, इति प्रतिपादित्वेन मभवात् ॥

अर्थात् क्षपक श्रेणी आरुढ़ हुये ऐसे द्रव्य पुरुषको अनिवृत्ति करणके सवेदभागतक वेदत्रयका तीनों वेदोंका कथन परमागम में कथन किया है। ऐसा कहा है। तथा करणत्रयमें २१ मोह का उपशम या क्षय करता ह। ऐसा कहा है। 'एगवीसमोह खवणु-वसम, एक वीस मोहमें अप्रत्याख्यान कषाय चौकड़ी प्रत्याख्यान कषाय चौकड़ी संज्वलन कषाय चौकड़ी नो कषाय ९ इस तरह २१ प्रकृतियोंका नाम गिनते समय तीनो वेदोका उपशम या क्षय करता है ऐसा कहा है इसलिये एक ही जीवको तीनों वेदो का उदय क्रमसे होना मान्य होता है। न कि एक जीव को एक ही वेद, इसलिये एक भवमें तीनो वेदोंका क्रमसे उदय संभव है। उसी तरह श्री धवलाजीके ५ वे पुस्तक में भी कहा है। 'मणुसिणी मिथ्याइट्ठि सुवेदसंकतीए अभावादो। अर्थात् मनुसिणीको मिथ्यात्व दशामें वेद संक्रमणका अभाव है। सासादनादि गुणस्थानमें वेदका परिवर्तन होता है। ऐसा ध्वनित होता है इस उपरोक्त पंक्ति में एक मिथ्यात्व गुणस्थानमे वेदका परिवर्तन नहीं होता है। ऐसा साफ तौरसे कहा है। इसलिये एक ही जीव में वेद का परिवर्तन होता है।

पर्याप्ततामे यदि वेद परिवर्तन न मानकर आप पर्याप्त तथा अपर्याप्तावस्थामे वेद परिवर्तनका अभाव सर्वथा मानने पर अपर्याप्तावस्था मे स्त्रीवेद का उदय होने पर भी आप पुरुषाकार शरीर बनता है। लेकिन यह युक्ति युक्त नहीं। जिस तरह स्त्रीवेद के साथ सम्यक्त्वका विरोध अपर्याप्तावस्थामे है। उसी तरह अपर्याप्तावस्थामे स्त्रीवेदके साथ वज्र वृषभ नाराच सहनन का भी विरोध भी कर्म भूमि में है। इसलिये श्री गोम्मटसारमें कर्म भूमि पहिला में, प्रथमके तीन सहनन नहीं होता ऐसा कहा है। इस वचन के साथ विरोध भी उत्पन्न होता है। तथा श्री धवला मे स्वोदय और परोदयके विषयमे विचार करने पर एक भवमे आजन्मसे आमरण तक एक ही भाव वेदका उदय मानने मे बहुत दोष आते हैं। क्योंकि वेदके उदयके साथ ही शरीरका बनना होना आचार्यों ने माना है श्री अकलक देवने राजवार्तिक मे भी कहा है।

"यस्योदयात् स्त्रैणान् भावान् मादवास्फुटत्व-क्लैब्य-मदनावेशनेत्रविस्फालन् सुख पुस्कामादीन् प्रतिपद्यते सः स्त्रीवेद. । तस्योद्भूत वृतित्व इतरयोः पुंनपुंसकयो. सत्कर्म द्रव्यावस्थानाभ्यद् भावः। ननु लोके प्रतीत योनिमृदुस्तनादि स्त्रीवेदलिंगं ? न, तस्य नाम कर्मोदय निमित्तत्वात्। अतः पुंसोऽपि स्त्रीवेदोदयः। योषितोपिपुंवेदोदोपि अभ्यंतर विशेषात्। शरीराकारस्तु नाम कर्म निर्वर्तितः।

अर्थ— जिसके उदयसे स्त्री भावोंको मृदु, स्फुटत्व क्लीव मदनका आवेश नेत्र विभ्रम विस्फालन सुख, पुरुषोंकी इच्छा करना इत्यादिकोंको प्राप्त होता है उसे स्त्रीवेद कहते हैं। उस स्त्रीवेद से उत्पन्न हुई जो वृत्ति है वह वृत्ति पुवेद में और नपुन्सक वेद में नहीं है। इन दोनों वेदो की सत् कर्मों का अवस्थान अन्य भाव रूप है।

शंकाकार—इस लोकमें ऐसी प्रतीति है कि योनि, मृदुस्त-नादि स्त्रीवेद लिंग है।

समाधान—ऐसा नहीं है। उनके होनेका कारण नाम कर्मोदय के निमित्तसे होता है इसलिये पुरुषको भी स्त्रीवेद का उदय होता है। कदाचित् स्त्रीको भी पुवेदका उदय होता है। इसका कारण अभ्यंतर विशेष है। और शरीरके आकार नाम कर्म से बनते हैं।

इस उपरोक्त उद्धरण से यही स्पष्ट अर्थ निकलता है कि, अपर्याप्तावस्थामें द्रव्य शरीरका आकार उसी भावके अनुसार बनता है। इसलिये 'तस्योद्भूतवृत्तित्वं, ऐसा पद रक्खा है और बाकी वेदोंका अवस्थान् अलग है। अलग सत् स्वरूप द्रव्य कर्म अलग है तथा 'पुमः, ऐसा पद रक्खा है। वह पुरुष चिन्ह जिस शरीर को हो उस शरीर चिन्हसे ही पुरुष संज्ञा आती है।

संज्ञा शरीर पर्याप्तिके बाद मालुम होता है। इसलिये अपर्या-प्तावस्थामें वेद वैषम्य नहीं होता। वेद वैषम्य होनेके लिये अभ्यं-तर हेतु दिया है। वह अभ्यंतर हेतु भाव स्वरूप है। वह भाव

स्वरूप हेतु द्रव्यके विना नहीं होता जब तक द्रव्य शरीराकार अन्य रूप नहीं बना हो। तब तक भाव वेदका परिवर्तन भी भाव में नहीं होता एक समयमें दो वेदोंका उदय नहीं होता है। भाव वेद का उदय जिस तरह होता है उसी तरह द्रव्य वेद भी बनता है। हां इतना अतर है कि, भाव वेद कारण और द्रव्य वेद (लिंग) कार्य नहीं है लेकिन भाववेदका और नाम कर्मका सहयोग संबन्ध जरूर है। इस सीमाका उल्लंघन अपर्याप्तावस्था में कर नहीं सकते हैं। यदि स्त्रीवेदके समय में भी अपर्याप्तावस्था में द्रव्य पुरुष का शरीर बनता है। एसा मानोगे तथा स्त्रीवेदके उदय के साथ भी वज्र वृषभ नाराच संहनन होता है ऐसा मानेंगे तो कर्म भूमि में द्रव्यस्त्रियोंका भी वज्र वृषभ नाराच संहनन मिलता है ऐसा माननेका प्रसंग आवेगा। लेकिन बंध स्वामी प्रकरण में (ध० ८ पु० में) स्त्रीवेदके साथ वज्र वृषभ नाराच संहनन का नाम नहीं गिनाया है। द्रव्यस्त्री मुक्तीकी मान्यता मानने वाले श्वेतांबराचार्यों ने भी द्रव्य स्त्रीको वज्र वृषभ संहनन माना नहीं है। तो दिगम्बराचार्यों ने कैसे मानेंगे। इसलिये अपर्याप्तावस्था में वेद वैषम्य नहीं है।

शंकाकारः—पमत्तस्य उच्चदे—एको अट्ठावीसमोह संत कम्मिओ अण्णवेदो इत्थीवेद मणुस्सेसु उववण्णो। गब्भादि अट्ठवस्सि ओ वेदसंम्मत्तं अपमत्तगुणांच जुगवंपडिवण्णो पुणो पमत्तोजादो।

अर्थः—एक अठावीस मोहनीय कर्म की सत्ता रखने वाला अन्यवेदी स्त्रीवेद मनुष्योंमें उत्पन्न होगया गर्भादि आठ वर्षके बाद वेदक सम्यक्त्व अप्रमत्त गुणस्थानको युगपत् प्राप्त किया है। फिर प्रमत्त हुआ।

इस प्रकार स्त्रीवेद मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ तथा गर्भादि आठ वर्षके बाद ऐसा पद आनेसे अपर्याप्तावस्था में उत्पन्न हुआ ऐसा कहा है। इससे सिद्ध होता है कि, अपर्याप्तावस्थामें वेद वैषम्य है नही तो स्त्रीवेदी वाला कोण है। पुरुष या स्त्री? सो स्पष्ट करो।

समाधानः—आपकी समझ जो बेठी है कि इत्थीवेद मनुष्यों सु उत्पन्न हुआ ऐसे पदसे वेद वैषम्यता अपर्याप्तावस्थामें होता है। लेकिन यह भाव गलत है। क्योंकि उस पदमें अन्यवेदी स्त्रीवेद मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ ऐसा है। तो अन्यवेदी कोण? ऐसा प्रश्न होता है। कदाचित् कहोगे कि स्त्रीवेदी सो ठीक नहीं है क्यों कि अन्यवेदी शब्द स्त्रीवेदीसे भिन्नपणा दिखाता है। इसलिये स्त्रीसे अन्य पुरुष ऐसा ही प्रतीत होता है इससे यह तात्पर्य निकलता है कि, एक पुरुषवेदी आगे जिसको स्त्रीवेदका उदय होगा ऐसा पुरुष पर्याय में ही उत्पन्न हुआ फिर स्त्रीवेदी हुआ। गर्भ से आठ वर्ष तक तो सम्यक्त्व होता नहीं। आठ वर्ष के बाद ही सम्यक्त्व अप्रमत्तगुणस्थान दोनों हो गये। उसके बाद प्रमत्तगुणस्थान होता है। ऐसा कहा है। इस प्रकार ८ वर्ष तीन मुहूर्त सह कम स्त्रीवेद की स्थिति प्रमाण अंतर लब्ध होता है। इससे

यह नहीं समझना कि अपर्याप्तावस्थामे स्त्रीवेदका उदय था लेकिन गर्भके बाद आठ वर्ष तक कभी भी वेद परिवर्तन हो सकता है। सो भी पर्याप्त में ही अपर्याप्तमे वेद वैषम्य रहता नहीं यह निश्चय जानो। क्योंकि, आठ वर्ष तक तो अप्रमत्त या प्रमत्त गुणस्थान होता नहीं इसलिये ८ वर्ष कम करने का हिसाब बताया है। यह अन्तरका कथन नैगम नयकी प्रधानतासे कहा है। न कि शुद्ध पर्यायार्थिक नयसे। तथा इसी पक्तिमें २८ मोह प्रकृती की सत्ता रखने वाला ऐसा साफ लिखा है तथा अन्तरानुमक कथन करनेवाले श्री मद्वीरसेनाचार्य ने तो प्रतिज्ञा ही किया है। देखो। पु० नं० ५ पे० न० ५

'किंतु णइगमणयमविलंबिय अन्तरपरूवणाकीरदे तस्स साम-विसेसुहय विसयत्तादो तदोण एसदोसो"

अर्थात्—किंतु नैगमनयका अवलंबन लेकर अंतर प्ररूपणा की जा रही है। क्योंकि, नैगमनय सामान्य तथा विशेष इन दोनों का विषय करता है। इसलिये यह कोई दोष नहीं है।

इस प्रकार ग्रंथकार स्वय प्रतिज्ञा करके ही नैगमनयकी अपेक्षा ऐसे कथन कर रहे हैं। जो लोग श्री षट्खण्डागमसे द्रव्यका कथन न करके भाव का ही कथन मानते हैं। वे उपरोक्त विषय पर मनन करें। अन्तरका विषय नैगमनयका ही है। शुद्ध पर्यायार्थिक नयमे या भाव कथनमें अंतर निकल ही नहीं सकता क्योंकि पर्याय भाव समयवर्ती लिया है इसलिये समयवर्तीमे अंतर किसका निका-

लोगे ? इस प्रकरण मे विचार करके भावपक्ष वाले अपना हठवाद छोड़ देंगे।

अब इस वेदपरिवर्तन में हम आपको और प्रमाण का उद्धरण करते हैं। देखो भाग १ धवला पे-नं० २२२

तदो अंतो मुहुत्तं गंतूण चउसंजलणाणवणोकसायाणमंतरं करेदि सोदयाणमंतोमुहुत्त मेत्ति पढमट्ठिदिं अणुदयाणं समऊणावलिमेत्तिं पढमट्ठिदिं करेदि। तदो अंतर करणं काऊण पुणो अंतोमुहुत्तगदे णउंसयवेदं खवेदि। तदो अंतोमुहुत्ते गंतूणित्थिवेदंखवेदि। तदो अंतो मुहुतं गतूण छण्णोकसाए पुरिसवेदचिराणसंत कमेण सह सवेद दुचरिम समए जुगवं खवेदि। तदो दो आवलिय मेत्त कालंगतूण पुरिसवेदंखवेदि।

अर्थः—तत्पश्चात् आठ कषाय या सोलह प्रकृतियोंके नाश होनेपर एक अन्तर्मुहूर्त जाकर चार संज्वलन और ६ नौ कषायों का अंतरकरण करता है। अंतर करण करनेके पहिले चार सज्वलन और नौ नोकषाय सम्बंधी तीन वेदोंमें से जिन दो प्रकृतियों का उदय रहता है। उनकी प्रथम स्थिति अन्तर्मुहुर्त मात्र स्थापित करता है। और अनुदयरूप ग्यारह प्रकृतियोंकी प्रथम स्थिति एक समय कम आवलिमात्र स्थापित करता है। तत्पश्चात् अंतरकरण करके एक अन्तर्मुहुर्त जाने पर स्त्री वेदका क्षय करता है। तदनंतर एक अन्तर्मुहुर्त जाकर स्त्रीवेदका क्षय करता है। फिर एक अन्तर्मुहुर्त जाकर सवेद भागके द्विचरम

समयमें पुरुष वेदके पुरातन सत्तारूप कर्मों के साथ छह नोकषायका एक साथ क्षय करता है। तदनंतर एकसमय कम दो आवली मात्र कालके व्यतीत हो जेपर पुरुषवेद का क्षय करता है। हिन्दीटीका धवला पे.नं.२२२

इस उपरोक्त उद्धरणमे भी वेदपरिवर्तन पर प्रकाश काफी पड़ता है। पं० जी ! एक वेदका ही वेद उदयमें हो तो २१ प्रकृतियोंका उपशम या क्षय किस तरह कर सकता है। यह आप ही विचार करो।

श्री मूलाचारमें भी देखो गाथा नं० ८१ पर्याप्ताधिकार में पंचिदियादुसेसा सण्णी असण्णी य तिरियमणुसायते होति इत्थि पुरिसाणउंसया चावि वेदेहि ॥८१॥

इस गाथाकी टीकामें कहा है कि, "जिसका जो द्रव्यवेद होता है वह आजन्म रहता है। उसमें बदल नहीं होता है। भाववेदोंमें परिवर्तन होता रहता है। इस आधारसे भी भाववेदमें परिवर्तन माननेमें कोई हानि नहीं है। इन ग्रन्थोंको अब पडित लोग अप्रमाण कहते बैठेगे क्योंकि अपने विरुद्ध विषयोंका कथन हुआ क्योंकि इन ग्रंथोंमे उनका मतलब साधता नहीं। तथा देखो

अंतिम तिय संहडणस्सुद ओपुण कम्मभूमि महिलाण।
आदिमतिम संहडणं णत्थित्ति जिणेहिं णिदिट्ठ ॥३२॥

अर्थ:—अन्तके तीन अर्द्धनाराचादि संहननोंका उदय कर्मभूमी स्त्रियोंका होता है। और आदि के तीन संहनन कर्मभूमि स्त्रियों को नहीं होते हैं ऐसा श्री जिनेन्द्रभगवान ने कहा है।

इस प्रकार श्री गोम्मटसार की गाथा है। इसलिये इस गाथा से यह ध्वन्यर्थ निकलता है, कि अपर्याप्तावस्थामें यदि स्त्री वेदी जीव को वज्रवृषभ नाराच संहननका उदय होनेमें कोई हानि नहीं मानोगे तो उपरोक्त गाथासे किस अवस्थामे कर्मभूमि महिला को निषेध कर सकते हैं। क्योंकि मणुसिणीको अपर्याप्तावस्थामें स्त्रीवेदका उदय और वज्रवृषभ संहनन युक्त पुरुषाकार शरीर होने मे कोई भी विरोध नहीं है तो कर्मभूमि स्त्रियोंको आदि के तीन संहननोंका निषेध कैसे और किस मुँहसे कर सकते हैं। यह अचरिज की बात है।

पं० सोनीजीने अपने पक्ष की पुष्टिमें विचार न करके ही लिखते चले गये हैं आगे पीछेका विचार नहीं किया है। क्या अपर्याप्तावस्थामें स्त्रीवेदका उदय और वज्रवृषभ नाराच संहनन का उदय माना जाय तो कर्मभूमि द्रव्यस्त्रीको वज्रवृषभ नाराच संहननका निषेध किस तरह कर सकते हैं। तथा द्रव्यस्त्री भाव पुरुषके अपर्याप्तावस्थामे भी किस तरहसे वज्रवृषभ नाराच संहनन का तथा सम्यक्त्वा निषेध करनेमें हेतु क्या है सो जनताके सामने पेश करोगे क्या ?

❀ इति चतुर्थ प्रकरणं समाप्तं ❀

प्रकरण ५

ग्रंथान्तर की घोड़दौड़ी हानिकारक होगयी
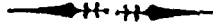
वाचक वृन्द ! पं० सोनीजी बहुत बार लिखचुके हैं। ग्रंथांतरसे द्रव्यस्त्री को पाच गुणस्थान की सिद्धि होती है। उसी तरह पर्याप्तिको भावात्मक सिद्ध करनेके लिये मूलाचारकी श्री वसुनन्दी सिद्धात चक्रवर्ती की टीकाका शरण लेकर उनके कथित कारण पर्याप्तिका आधार देकर पर्याप्तिको भावात्मक सिद्ध करने का बड़ा प्रयास किया है और श्री धवला कथित कार्य पर्याप्ति जो कि पुद्गल विपाकी के साथ घटाया है उसे छोड़ दिया है। उसका कारण अपने को हानिकार होनेसे उसे छोड़ दिया है। उसी तरह उसी ग्रन्थांतर की टीकाके आधारसे मै उनके सामने एक शंका रखता हूँ उसी ग्रथांतरके आधारसे ही उत्तर देने की कृपा करेंगे तो बहुत अच्छा हो जायगा। और जनताको भी बहुत लाभ होगा। वह प्रमाण ऐसा है कि, 'वेदका अर्थ द्रव्यवेद किया है। उसी ग्रंथके अनुसार श्री षट्खण्डागमका अर्थ करके वेदका

अर्थ द्रव्यवेद लेनेपर द्रव्यस्त्रीको मुक्ति सिद्धि अनायास ही सिद्ध होती है ? क्योंके वेदका अर्थ द्रव्यवेद करने पर स्त्रीवेदी को ९ गुणस्थान की सिद्धि होती है उसका निराकरण किस तरह करोगे ? अब ग्रंथान्तरकी घोड़ दौड़ी करोगे या द्रव्यस्त्री को मुक्ति सिद्ध करोगे ? वेदका अर्थ आपको भाववेद करने के लिये आपके पास कोणसा प्रमाण है ? नहीं, फिर क्या इन पंक्तिका दूसरा अर्थ कोणसा कैसा करोगे। अब आपको ग्रथांतरकी घोड़ दौड़ी हानिकारक है या नहीं सो देखो। या ग्रन्थांतर की घोड़ दौड़ी छोड़कर उस ग्रंथके अर्थमें आवोगे सो मुखसे कहो तो सही। प० जी उसी तरह द्रव्य स्त्रियों को पांच गुणस्थानोंकी सिद्धिके लिये अब घोड़दौड़ी न करके सीधेसे कथित सू० नं० ९३ में से संजद शब्द प्रक्षिप्त मानना पड़ेगा या नहीं सो अभी भी विचार करके देखो। क्योंकि, श्रीषट्खण्डागममें तो द्रव्यस्त्री का संख्याका प्रमाण बताने वाला सूत्र आपके पास प्रमाण में दिया है।

तथा द्रव्यस्त्रीके सम्यक्त्वका काल दिखाने का सूत्र भी देशन तीन पल्यका दिखाया है। तथा तीन पल्य वर्ष आयुवाली स्त्री द्रव्यस्त्री होती है ऐसा साफ सिद्ध किया है। उसी तरह अंतरानुगममें भी द्रव्यस्त्रीके मिथ्यात्वादिकोंका अंतर काल भी दिखाया है। इन सबका कथन द्रव्य स्त्रियोंका आता है और सत्प्ररूपणामें उसके गुणस्थानोंकी सत्ता दिखाने वाला सूत्र नहीं है

ऐसा मानना निदान आपके सरीखे विद्वानोको शोभा नहीं है। इतना दर्पणके समान स्पष्ट आधारको ठुकराकर अपना हठाग्रह नहीं छोड़ना यह भी शोभादायक नहीं है आप अपनी भलाई को न भूलकर सीधे ही अब द्रव्य स्त्रियोके का सूत्र दिखानेके लिये उतरना ठीक होगा। आपको उसीमें शोभा है आपका भला भी उसीमें है। अब हठ पकड़ना ठीक नहीं है। अब आपका कर्तव्य है कि आप हठाग्रहको छोड़दें तथा एकांतभावको छोड़कर मणुसिणी शब्दका अर्थ द्रव्यस्त्री भावस्त्री ऐसा दोनो होते और उसका अवबोध करनेके लिये कई जगहमें सूत्रोमे वर्णन आया है उसे अपनाकर स्पष्ट कर देवें कि श्री षट्खण्डागममें केवल भाव का ही कथन नहीं है। द्रव्यका भी है। और सूत्र नं० ९३ वा द्रव्य स्त्रियोके पांच गुणस्थानोंका कथन करनेवाला है। उस सूत्र में जो नियत शब्द है वह द्रव्यस्त्रियों को पाच गुणस्थानका नियामक है। आगे जो भाववेदकी अपेक्षा से नरु गुणस्थानोका कथन है तथा सूत्र नं० १६५ वां सूत्र मणुसिणीको १४ गुणस्थान का कथन करने वाला है वह सामान्य मणुस्सिणीको १४ गुणस्थान बताया है। वह भावस्त्री वेद उदयगके आधारभूत गति की प्रधानता से हैं। जैसाकि सूत्र नं० ९३ की वृत्तीमें बताया है उसीके अनुसार कथन है मणुसिणीके तीनों तरहसे गुणस्थानों की सत्ता दिखानेवाले तीन सूत्र है। प्रथांतर की घोड़ दौड़ी करने की जरूरी नहीं है। ऐसा लिखकर आपने अपने कलव युक्त साहित्यको

निष्कलंक बनावो और अपने निष्पक्षपातभाव का परिचय देवें। नहीं तो नीचे लिखे प्रश्नोंका उत्तर देने का कष्ट उठाने की कृपा करें।

सूत्र नं० ९३ में संजद शब्द प्रक्षिप्त न मानने पर नीचे लिखे आपत्तियां आती हैं उनका निराकरण करो।

(१) द्रव्य स्त्रीके पांच गुणस्थानोंका कथन करने वाला सूत्र कोणसा है?

(२) द्रव्य स्त्रियोंको पांच ही गुणस्थानका नियम होने पर ही वेद वैषम्यसे द्रव्यस्त्री और द्रव्य नपुंसकको मुक्तिका निषेध युक्तियुक्त बनता है अन्यथा नहीं इसलिये पांच गुणस्थानों का नियामक सूत्र दिखावो नहीं तो सब ही द्रव्य वेदवालों का मुक्तिका अधिकार सिद्ध होता है उसका निराकरण कैसा करोगे?

(३) श्री षट्खण्डागमका कथन सब भाव की अपेक्षासे माननेवाले वेद वैषम्य सिद्धि कैसे करोगे? क्योंकि उसके लिये द्रव्य शरीर मानना पड़ेगा ना?

(४) वेद वैषम्यता अपर्याप्तावस्थामें मानने पर नरुभम वाले सब ही वेदको मुक्ति की सिद्धि मानने में विरोधक कौण है?

(५) अपर्याप्तावस्थामें स्त्रीवेदका उदय होने पर भी वज्रवृषभ संहनन युक्त पुरुषाकार शरीर बननेमें विरोध नहीं तो फिर कर्म भूमि महिलाको आदिम संहननका अभाव कैसे हो सकता

है ? तथा भाववेदका और द्रव्यवेदका कोई भी सहयोगका निमित्त कारण नहीं मानना क्या ? यदि ऐसा मानोगे तो श्री गोम्मटसार राजवार्तिक श्लोकवार्तिक आदि ग्रंथोमें जो परस्पर हेतु माना है वह अप्रमाण है ?

(६) वेद वैषम्य जब कार्य है तब उसे कारण क्या है ?

(७) वह वेद वैषम्य देव, नारक, भोगभूमि मनुष्य तिर्यंच म्लेच्छ खण्डोमें क्यों नहीं हो सकता और आर्यखण्डमें ही क्यों होता है ? इसका प्रमाण देना जरूरी है।

(८) साम्यवेदी स्त्री तथा नपुंसकोंको मुक्तिका निषेध करनेमें हेतु कोणसा है ?

(९) भाव पुरुष द्रव्यस्त्री वेदीको भी मुक्तिमें विरोध हेतु क्या ?

(१०) योनिमेहनादिकोंको अंगोपांग नहीं कहा है ? उन्हें लिंग कहा है ? वह लिंग बनने में हेतु कौण है ?

(११) द्रव्यलिंग और भावलिंग बननेमें आपसमें हेतु नहीं है तो यह नियम इन्द्रियोमें क्यों नहीं ? क्योंकि, द्रव्येंद्रिय और द्रव्यलिंग शरीर जन्य है। भावलिंग घाति कर्मजन्य है।

(१२) कार्यरूप पर्याप्ति पुद्गल विपाकी है या जीव विपाकी। तथा आहार पर्याप्ति पुद्गल विपाकी है या जीव विपाकी है। इनको श्री धवला प्रमाण सह उत्तर देना। क्योंकि धवलामें पर्याप्तिके विषयमें बहुत कहा है। उसका ही प्रमाण देना।

❀ इति पंचम प्रकरणं समाप्तम् ❀

प्रकरण ६

अंगोपांग और लिंग

कई लोगोंकी यह राय है कि, अंगोपांग नाम कर्मोदय में ही योनि मेहनादि है। इस प्रकार जैन बोधकमें चर्चा चल रही है। अग और उपांगमें योनि मेहनादि नहीं गिनाया है। किसी भी आचार्यों ने अगोपांग में नहीं गिनाया है। क्योंकि, अंग और उपांगका कार्य अलग है और योनिमेहनादिका कार्य अलग है। योनिमेहनादि गर्भ धारण वीर्यविमोचन आदि कार्य है। इसलिये इनको लिंग कहते हैं। उस वेदके उदीर्णा के लिये उस लिंग के स्थानमें ही जागा है। इसलिये इस वेदके अनुकूल ही लिंग बनता है। अंगोपांगका कार्य उससे अलग है। जिस तरह गो जाति जीवोंको सास्नादिपख अंगोपांग बनता है। उसी तरह मनुष्योंमें भी अगोपांग नाम कर्मसे ललाट नासिकादीनां उपांगोंका ज्ञान होता है। लेकिन श्री अकलंकदेव श्री राजवार्तिकमें योनिमेहनादिको उपांग न कहकर उन्हें लिंग कहा है "नाम कर्मोदया योनिमेहनादि द्रव्यलिंगभवति, अर्थात् नाम कर्मोदय से योनि मेहनादि द्रव्य लिंग है। इनको

लिंग क्यों कहा है। मनुष्यका या स्त्रीका या नपुन्सकका लिग चिन्ह अलग २ है। इनको भेद करनेवाला या विशिष्ट लिंग की व्यवस्था रूपमें स्तन-योन्यादि शिश्नामूच्छ्अंडकादि तद्व्यतिरिक्त ऐसे लिंग उन २ भाववेदोदयसे होते है। इसलिये भाव वेदका उदय अपर्याप्तावस्थामें जैसे हो वैसे ही लिंग बनता है (भाववेद स्त्रीका हो और लिंग मेहन हो या पुष्कांड (बीजकोष) हो ऐसा कदापि नहीं हो सकता है। इसलिये द्रव्यलिंग और भावलिंग ऐसे दो भेद किया है। जिस तरह भावेंद्रिय लब्धि और उपयोग है और द्रव्येन्द्रिय उनही के अनुसार नाम कर्मोदयसे ही बनते हैं। उसी तरह अपर्याप्तावस्थामें द्रव्यलिंग और भावलिंग का यथार्थरूप से होनेके लिये दोनोंका सहयोग कारण जरूर होना चाहिये। इंद्रिय ज्ञान का क्षयोपशम सर्वांगमें होता है तथा प्रति नियत इंद्रियोंका अवलबन लेकर ही वह्य तत्तद्युक्त द्रव्येंद्रियकी रचना होती है। उसी तरह वेद नोकषाय रूप मोहनीय कर्मोदय होने पर भी वह सर्वांग मे होते हुए भी नियत स्थान नियत लिंगकी शरीरमें रचना होनेकी जरूरी है। इसलिये अपर्याप्तावस्थामें भाववेदके अनुरूप द्रव्य लिंग बनता है इसलिय वेद साम्यता जरूर अपर्याप्तावस्था में होता है। कहा भी है।

त्रिवेदा. प्राणिनः शेषास्तेभ्यस्तादृक् सुहेतुत. ।
इति सूत्र त्रयेणोक्त लिंगभेदन देहिना ॥ १ ॥

इसी तरह बाह्य लिंग और द्रव्य लिंग की व्यवस्था संपूर्ण प्राणिमात्रोंमें व्यवस्थित है। जब भावलिंग और द्रव्यलिंगकी अपेक्षा से विचार करते हैं तब इस लिंग शब्द की सार्थकता ही उत्पाद्य और उत्पादक की इंद्रियोंके समान व्यवस्थिति माननेमें कोई हानि नहीं है। तथा श्री तत्वार्थ सूत्रमें भी कहा है।

'गति कषाय लिंग, इत्यादि सूत्रमें लिंग शब्द भी रखा है वेद नहीं कहा। लिंग शब्दसे तीनों भावलिंगोंका ग्रहण किया है तथा इसके सहचारि हास्यादिकों का भी ग्रहण करनेको कहा है तो सहचार का भी शास्त्र में कथन कर सकते हैं। तथा आत्म परिणाम होनेसे द्रव्य लिंगका कथन नहीं किया तथापि जब कर्मो दय सापेक्षता की अपेक्षासे वर्णन करते हैं तब लिंग के दो भेद एक द्रव्य लिंग और भावलिंग करके दोनो भी औदयिक भाव की समानतासे औदयिक भावमे ग्रहण कर सकते। लेकिन वक्ता की विवक्षारूप भेदसे कथन हो सकता है। इसलिये औदयिक भावमें संग्रहण कर सकते है मात्र राजवार्तिककारने घाति कर्मोदय वाले की भावों की मुख्यता लेकर ही किया है तथा आगे अघाति कर्मोदयको भी उपलक्षणसे ग्रहण किया है। गति और लिंग अघाति नामकर्मका उदय माना है।

गति इन्द्रिय काय पर्याप्ति लिंग योग लेश्या इनमें पुद्गल विपा-की पणा भी सिद्ध होता है और जीव विपाकी पणा भी सिद्ध होता है तथा काय और आहार का पुद्गल विपाकी की मुख्यता से

वर्णन कर सकते हैं। श्री धवला में उपरोक्त सारे दोन्हों की अपेक्षासे कथन किया है। केवल भाव की अपेक्षा से कथन करने की मान्यता गलत है। इस विषय पर हमने बहुत काफी प्रकाश डाला है।

अंगोपांग या उपांग कहने में सर्वथा नामकर्मोदय जनित पुद्गलविपाकी का ही मुख्यता कथन होने से अघाति कर्मकी मुख्यताका कथन होनेसे सहयोग संबंध घटा नहीं सकते हैं। और लिंग कहनेसे घातिकर्मोदयका और अघातिकर्मोदयका सहयोग संबन्ध घटित होता है इस प्रकारका अन्तर योनि मेहनादिक के लिंग कहने में और उपांग कहने में अन्तर पड़ता है इसलिये योन मेहनादिकको श्री आचार्य प्रवरोंने लिंग शब्दका प्रयोग करके अन्तरंगिक सहयोगिताका दिग्दर्शन कराया है इसी तरह श्री गोम्मटसारमे भी 'पुवेदोदयेन निर्माण नाम कर्मोदय युक्त अंगोपांग नामकर्मोदय वशेन श्मश्रु शिश्नादि लिंगांकित शरीर' ऐसा पद रखकर अंगोपांगसे भिन्न करके लिंगको दिखाया है इस तरह लिंग और अंगोपांग इनमे अन्तर है। इसलिये यह समझना चाहिये कि अपर्याप्तावस्थामें भावलिंग और द्रव्यलिंग इन दोनोंका सहयोग संबन्ध जरूर है। इसलिये साम्यवेदपणा अपर्याप्तावस्थामें सिद्ध होता है। न कि वेद विषमता। इसतरह समझना चाहिये

शंका—इस तरह सहयोगताका संबंध मानने पर वेद वैषम्यता की सिद्धि नहीं होगी।

समाधान:—वेद वैषम्यता अपर्याप्तावस्थामें तो नहीं होता तथा पर्याप्तावस्थामें भी देव, नारक, भोगभूमि नर तिर्यञ्चमें सर्वथा है ही इसमें वेद वैषम्यता नहीं है। कर्मभूमि मनुष्य और तिर्यंच में भी समवेदता बहुलता पायी जाती है। क्वचित् वेद वैषम्यता पायी जाती है। वह भी पर्याप्त दशामें ही होती है यदि अपर्याप्त दशामें वेद वैषम्यता मानकर उसको आमरणांत मानोगे, तो वेद परिवर्तन की सिद्धि शास्त्रमें कहीं भी नहीं होती थी। लेकिन वेद संक्रमण परिवर्तन की मान्यता है वह भाव वेदमें परिवर्तन होता है। देखो 'मणुसिणी मिच्छा दिट्ठिस्सु सत्तकोडि अधियावो वेदतर संकतीए अभावादो, ऐसा धवलामें वेद संक्रमणका अभाव मिथ्यात्वी मणुसिणीका माना है। वह संक्रमण किस तरह सिद्ध करोगे? नहीं कर सकोगे। इसलिये हमारे दिगम्बर जैन सिद्धात में वेद संक्रमण या परिवर्तन जरूर होता है। और वह भी पर्याप्त दशामें ही मान सकते हैं। अपर्याप्तमें नहीं। मूलाचारकी हिंदी टीकामें पे० न० ५५४ में कहा है कि, 'भाववेद परिवर्तन स्वरूप है। यह पद निरर्थक ठहरेगा? इसकी सिद्धि पं० जिनदास जी सोलापुर वाले करें। हस्तलिखित मू० चा० की हिन्दी टीका "गाथा विषैं दूसरा वेदका ग्रहण है। सो द्रव्यवेदके जानवे अर्थी है। यह हिन्दी अनुवाद श्री वसुनंदी सिद्धांत चक्रवर्ती के सस्कृत टीका पर से किया है। अतः एव यह प्रमाण भूत है। अब आप किसी तरहसे सदेह न करते हुये अपना मत

निर्मल बनाने की कृती करनेसे ही आपका हित होसकता है। अब हटवाद करनेमें या वितण्डा वाद करनेमें शिवाय हानि या नवीन पंथ भेदके शिवाय दूसरा कुछ भी फायदा नहीं। आपका पथ बिलकुल श्वेतांबरका पुष्टि करना है। क्योंकि यह आपका मत बहुत दोषोत्पादक है क्योंकि, भाववेद परिवर्तन न माननेसे तथा स्त्रीवेदके साथ अपर्याप्तावस्थामें वज्रवृषभनाराच सहननका उदय कर्म-भूमिमें माननेसे कर्मभूमि महिलाको भी वह उदय मानना महा भयकर घातक साहित्य होरहा है। इसलिये आपको ऐसा लिखना उचित नहीं यह हानिकारक है इतना सूचना देता हूँ। इससे आप सुधरजाने से दि० आम्नायका रक्षण होसकता है। और आपका भी क-ल्याण हो सकता है।

❀ इति षष्टम प्रकरणं समाप्तं ❀

प्रकरण ७

सौ सूत्रोंमें द्रव्यसे कथन क्यों ?
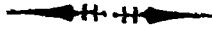
प० सोनीजी ने श्री षट्खण्डागम सूत्रोंमें सब कथन भावकी अपेक्षासे कथन है ऐसा मानते। वास्तविक सब ग्रंथका कथन भावकी अपेक्षासे नहीं। केवल भाव द्रव्यके विना नहीं रह सकते। इसलिए १०० सूत्रों तक द्रव्यका भी कथन है। क्योंकि, मार्गणाएं दो प्रकारके कर्मोदय से होते हैं। १ घाति कर्मोदयजन्य भावसे तथा अघाति कर्मोदयके निमित्तसे। मार्गणाका लक्षण कर्मोदयसे संभव माना है। घाति कर्मोदयजन्य भावात्मक है। और अघाति नामकर्मोदय निमित्त शरीरात्मक है। गति, इन्द्रिय काय इत्यादिक भावकी और द्रव्यकी अपेक्षासे कथित है। गति नामकर्मोदय जन्य है। तथा गति शरीरके विना नहीं रहती है। इन्द्रियमें भी दो भेद है। एक लब्ध्युपयोगरूप और एक शरीर नामकर्मजन्य शरीर निर्वृत्युपकरण रूप है। निर्वृत्युपकरण पौद्गलिक है। इसलिये द्रव्यशरीर की अपेक्षासे इनका कथन है इसलिये वे द्रव्यशरीरकी अपेक्षासे कथन है यह त्रिपाद् सत्य है। इसी तरह शरीर भी द्रव्य की मुख्यतासे कथन किया जाता है। शरीर नामका कोई भाव है? नहीं यद्यपि

शरीरके अंतरङ्ग विचार कोटिमें जाने पर आत्माके प्रदेशत्व ही शरीराकार बनता है कहो या जिस तरह आत्माके प्रदेशत्वका आकार बनता है उसी तरह शरीर भी बनता है। शरीर नामका कोई भी भाव नहीं होने पर भी शरीरको भी भाव कहते हो ! क्या यह ठीक है ? उसी तरह पर्याप्त भी दो तरहका है। एक पुद्गल विपाकी और जीव विपाकी। जीवविपाकी की मुख्यतासे वर्णन करते समय प्राण और पर्याप्ति इन दोनोमें कार्य कारण भाव संबन्ध मानते हैं। इसलिये उस अवस्थामे उसे जीवविपाकी कहते यह सत्य है। तथा जिस समय उसे प्राणका संबन्ध न रखते हुये शरीरादिकसे साथ सम्बन्ध रखते है उसे जीवविपाकी नहीं कहते जैसे धवलाजीमे विस्तारसे कहा है।

जैसे कि आहार पर्याप्ति। आहार कोई भाव है क्या ? यदि भाव है तो किस कर्मका उदय है। तथा वह आहार भाव घाति कर्मोदय है या अघाति कर्मोदय है ? इसप्रकार विचार करने पर आहार ग्रहण करने की शक्ति जो है वह आत्मशक्ति रूप कारण पर्याप्ति है। तथा उस शक्तिको कारण पर्याप्ति कहते हैं। और आहार वर्गणाओंको कार्यरूप पर्याप्ति कहते हैं। आहार वर्गणा पुद्गल स्कंधरूप है। शरीर रचना भी पुद्गल रूप है। इन्द्रिय रचना भी निर्वृत्युपकरण रूप पुद्गल स्वरूप तथा आत्मप्रदेश स्वरूप है भाषावर्गणा भी पुद्गल रूप है। श्वासोच्छ्वास भी वायुका जाना आना पुद्गल स्वरूप है। मन भी द्रव्यमन आत्माके प्रदेशरूप तथा पुद्गलवर्गणाका बना हुआ हृदय

में अष्ट दल कमलके आकार स्वरूप है वह पुद्गल है ऐसे श्री धवलामें कहा है।

'तेषु आत्मप्रदेशेषु इन्द्रिय व्यपदेश भाक्षु यः प्रति नियत सस्थानो नामकर्मोदयापादितावस्थाविशेषः पुद्गल प्रचयः स बाह्य निर्वृत्तिः। मसुरिकाकारा अंगुल असख्येय भाग प्रमिता चक्षुरिंद्रियस्य बाह्य निर्वृत्तिः। यवनालिकाकारा अंगुलस्या सख्येय भाग प्रमिता श्रोतृस्य बाह्या निर्वृत्तिः। अतिमुक्त पुष्प सस्थाना अगुलस्या सख्येय भाग प्रमिता घ्राण निर्वृत्तिः अर्धचन्द्राकारा क्षुर प्राकारा वागुलस्य संख्येय भाग प्रमितारसन निवृत्तिः। स्पर्शनेंद्रिय निर्वृत्ति रनियत सस्थाना सा जघन्येन अगुलस्य असख्येय भाग प्रमिता सूक्ष्म शरीरेषु उत्कर्षेन सख्येय धनांगुल प्रमिता महा मच्छ्रादि त्रस जीवेषु ? अर्थात् इसी तरह इन्द्रिय व्यपदेशको प्राप्त होनेवाले उन आत्मप्रदेशोंमें जो प्रतिनियत आकार वाला और नामकर्मके उदय से अवस्था विशेषको प्राप्त पुद्गल प्रचय है। उसे बाह्य निवृत्ति कहते हैं। इस बाह्य निर्वृत्तिको किस तरह भावमें ही घटित करोगे साफ पुद्गल प्रचय कहा है। फिरभी प० सोनीजी हठाग्रह वश भावका कथन करे तो उपाय नहीं उसी तरह और भी देखिये धवला पे० नं० २५६

'मनोद्विविध द्रव्यमनोभावमन इति। तत्र पुद्गल विपाकी कर्मोदयापेक्ष द्रव्यमनः।

अर्थः—मन दो प्रकार का है द्रव्यमन और भावमन। उनमें पुद्गल विपाकी अंगोपांग नामकर्मोदयकी अपेक्षा रखनेवाला द्रव्यमन है। हिन्दी टीका पे० नं० २५९

अब एक बात स्पष्ट करदेना चाहते हैं कि, जब इन्द्रियों को भी घाति अघातिकर्मकी सापेक्षा है। मनको भी है। इन्द्रियों मे या मनमे विचार करनेसे यह मालुम होता है कि, यद्यपि भावेंद्रिय या भावमन ज्ञान स्वरूपी है तथा द्रव्येंद्रिय या द्रव्यमन पुद्गल विपाकी अगोपांग नामकर्मजन्य आकार विशेष है। अघाति तथा घातिकर्मोदय सापेक्ष दोनो के बिना एकसे इन्द्रिया या मन का अस्तित्व ही नहीं रह सकता ऐसे हालतमे द्रव्यको उड़ाकर केवल भावका ही कथन है ऐसा कहनेका साहस करना उचित नहीं है। ज्ञानावरणीयकर्म की क्षयोपशमता से भावेद्रिय होते हैं। तो भी उसे अघातिकर्मोदय पुद्गल विपाकी अंगोपांगकी जरूरी है क्योंकि दोनोका सहयोग सम्बन्ध अपर्याप्तावस्थामे मानना पड़ता है। यदि अपर्याप्तावस्थामें भावेंद्रिय और द्रव्येंद्रिय की साम्यता होनेसे ठीक व्यवस्था बैठती है ऐसा धवलामे ही कथन है। क्योंकि इन दोनोमे साम्यता है। उसी तरह योनिमेहनादि पुद्गल विपाकी अंगोपांग के साथ भाववेदका भी साम्यपणा अपर्याप्तावस्था में जरूर है। पर्याप्तावस्थामे भले ही कचित् कर्मभूमिमें विषमता आचार्योंने कहा है लेकिन अपर्याप्ततामें विषमताका साधन ही नहीं है।

जब वेद विषमता कार्य है तो उसका कारण भी जरूर होना चाहिये। उसका कारण सब वादियोंमें यही मान्यता है कि कर्म विपाक विचित्रता ही कारण माना है। कर्म विपाक बिना पुद्गल प्रचय रूप नो कर्मरूप शरीरके नहीं हो सकता इसलिये श्री गोमट्टसारमें जो अपर्याप्तावस्थामें साम्यताका कथन है, वह विशेष खुलासा लिखा है। सामान्य कथन से बिशेष कथन बलवत्तर प्रमाण भूत होता है। इसलिये अपर्याप्तावस्थामें समानता है। कषाय का जिस तरह संक्रमण होता है उसी तरह वेद भी संक्रमण होता है तो भी वह संक्रमण उदय में होता है। मिथुन संज्ञारूप कार्य में नहीं। स्त्रीवेदके उदीर्णतामें रज विमोचन ही होगा वीर्य विमोचन रूप कार्य नहीं होगा पुवेदके उदयमें बीर्य विमोचनादि कार्य होगा। क्यों- कि यह पुद्गल विपाकी कार्य है। और भाव वेदका कार्य हाव भाव विलास विभ्रम नेत्र विस्फालन आदि है। यद्यपि भाव वेदो- दयका कार्य भावरूप ही कहा है वहां उस कार्यमें भावरूप अभि लाषा का ही मुख्य कथन किया है। तो भी वीर्य विमोचनादि पुद्गल विपाकी कार्यमें विषमता नहीं कही है। क्योंकि, पुद्गल विपाकी द्रव्यलिंग जनित कार्य उस स्थान विशेषमें ही होती है। और भाववेदोदय मोहनीय कर्मका क्षयोपशमरूप होनेसे वह सर्वांग में भावरूपमें ही उसका कार्य होता है। भाववेदमें भले ही विषमता हो तो भी मिथुनावस्थामें विषमता कभी भी नहीं होगी। जिस तरह ज्ञानमें ज्ञानने की क्षयोपशम शक्ति सर्वांग में विद्यमान होते

हुये भी द्रव्येंद्रियकी अपेक्षाका अवलंबन लेते समय उस उसके नियत मूर्त विषयोंका नियमरूप द्रव्येंद्रियोंसे नियतरूपी विषयों का ही ज्ञान होता है।

ज्ञानके और वेदके कथनमें साम्यता नहीं लेना चाहिये क्योंकि ज्ञान क्षयोपशमरूप है और वेद उदयरूप है इतना अतर है कहा भी है "चारित्र मोहनीयस्स कम्मस्स उदयेण इत्थि पुरिस-णपुंसयवेदा, ॥ ३७ ॥ सूत्र पु० नं० ७

वास्तविक वेद सामान्य एक है उसे अतरंग भेद तीन है अतरंगिक जिस २ वेदका उदय होता है। उस २ का ही भाव होता है। इन वेद कर्मके अनुसार ही अपर्याप्तावस्थामें द्रव्य वेद की रचना होती है ऐसा मैंने लिखा है। उसका कारण भी यह है कि, जीवोंको जो स्त्री पुरुष नपुंसक यह संज्ञा भाव वेदसे विशिष्ट जो पुद्गल विपाकी रचना विशेष द्रव्यलिंग है। उसकी अपेक्षासे संज्ञा दी जाती है। जैसे धवलामें कहा है।

"चारित्त मोहनीयस्स उद ओ कारणं, कज्जपुण तदुयविसिट्टो इत्थिवेदसण्णिदोजीवो। तेणपज्जायेण तस्सुप्पज्जमाणत्तादो ण कारणकज्जभावो एत्थ विरुज्झदे। एव सेसवेदाणंपिवत्तव्व। सेसा-वि भावा एत्थ संभवंति तेहि भावेहि वेदाणं णिद्देसो किण्ण कदो ? ण, वेद णिबंधण परिणामस्य खवोवसमियादि परिणामाभावा वेदवि-सिट्ट जीवदव्वट्ठियसेसभावाणं पि तियेद साहारणाण तद्धेत्तुत्त विरोहादो।"

अर्थः—चारित्र मोहनीय का उदय तो कारण है। और उसका कार्य है उस कर्मोदयसे विशिष्ट स्त्रीवेदी कहलाने वाला जीव चूंकि विवक्षित कर्मोदय मे उस पर्याय से विशिष्ट वह जीव उत्पन्न हुआ है। अतएव यहां कारण कार्य भाव विरोध को प्राप्त नहीं होता। इसी प्रकार शेष वेदोंके विषयमें भी कहना चाहिये।

शंकाः शेष क्षायोपशमिक आदि भाव भी तो यहां संभव है फिर उन भावोंसे वेदोंका निर्देश क्यों नहीं हुआ।

समाधानः—नहि किया, क्योकि, वेद मूलक परिणाम में क्षयोपशमिकादि परिणामों का अभाव है। तथा वेद विशिष्ट जीव द्रव्य में स्थित शेष भावोके तीनों वेदों में साधारण होनेसे उन्हें विवक्षित वेदका हेतु मानने में विरोध आता है।

इन सब बातोंको अच्छी तरह विचार कोटिमें लेने पर अपर्याप्तावस्थामें वेद साम्यता ही सिद्ध होता है।

कायका (शरीरका) लक्षण भी देखो "आत्मप्रवृत्युपचित पुद्गल पिंडः कायः, अर्थात् आत्माकी प्रवृत्तिसे उपचित किये गये पुद्गल पिंडको काय कहते हैं। आहारका लक्षण देखो

'शरीर प्रायोग्य पुद्गल पिंडग्रहणमाहारः, अर्थात् शरीर बनानेके योग्य पुद्गल पिंडको ग्रहण करना आहार है।

इस तरह १०० सूत्रों तक द्रव्यका भी कथन है श्री षट्खडागममें केवल भाव की प्रधानतासे कथन मानना भूल है द्रव्य का भी कथन है द्रव्य और भाव दोनोंका भी कथन है ऐसा मानने पर कोई भी दोष नहीं आता है।

❀ इति सप्तम प्रकरणं समाप्तम् ❀

प्रकरण ८

वेद शब्दका अर्थ

पं० सोनीजी वेद शब्दका अर्थ सर्वथा भाववेद मे ही मान रहे हैं लेकिन भाववेद में ही क्यों प्रयुक्त करना चाहिये द्रव्यवेद में क्यों प्रवृत्त नहीं करना चाहिये ऐसा मेरा प्रश्न उन पर कर रहा हूँ। पं० जी हर एक शब्दका अर्थ एक ही करने में उद्यत हो रहे हैं। लेकिन हर एक शब्दका अर्थ एक ही न होकर अनेक भी कर सकते हैं। क्योंकि स्याद्वाद न्यायवाले जैनियोंकी स्याद्वाद पद्धति ऐसी है। यदि वेद शब्दका अर्थ ही भाववेद एक ही होता है तो वेदके भाव और द्रव्य विशेषण लगाने की जरूरत भी क्या थी? नहीं थी लेकिन दो अर्थ आचार्योंने क्यों किया है। श्री राजवार्तिकमें द्रव्यवेद भाव वेद ऐसा किया है। उसी तरह बहुत ग्रंथोंमें किया है। तथा लिंग शब्दका अर्थ भी कहीं पर भाव लिंग और द्रव्य लिंग किया है क्योंकि 'मतिकषायलिंग, इत्यादि तत्त्वार्थ सूत्रमें जो लिंग शब्द आया है वह भावलिंगके अर्थ में वहां पर रखा है। कहीं पर लिंग शब्दका प्रयोग वेष (भेष) में भी किया

है। जैसे निर्ग्रंथलिंग सग्रंथलिंग। कहीं पर पुल्लिंग स्त्रीलिंग नपुंसकलिंग इनको भावमें और द्रव्यमें ऐसे दोनों में भी प्रयोग करते हैं उस तरह वेद शब्दका भी प्रयोग भाववेद तथा द्रव्यवेद में भी प्रयुक्त किया है तो द्रव्यवेदी नवमें गुणस्थान तक सब ही वेद वाले अर्थात् पुंवेद स्त्रीवेद नपुंसकवेद ऐसे तीनों द्रव्यवेद वाले को ९ नवगुणस्थान होते हैं। ऐसा मानने पर हानि क्या है? श्री षट् खंडागम में द्रव्यवेदी स्त्री नपुंसक को नवगुणस्थान होते नहीं ऐसा कहीं भी कहा नहीं। क्योंकि सू० नं० ९३ में संजद शब्द रखनेके बाद आप द्रव्यवेदी स्त्री नपुंसकोंको नवगुणस्थानों का निषेध कैसे करते हो? क्योंकि, वेद शब्दका अर्थ द्रव्यवेद ऐसा करते हैं। देखो आपको इष्ट भूत श्री वसुनंदि सिद्धांत चक्रवर्ती ने श्री मूलाचार ग्रंथमें किया है। उनको तो आप अप्रमाण कह सकते नहीं।

देखो मूलाचार द्वितीय भाग पे० न० ८४१ गाथा नं० ८९ पर्याप्ति अधिकारमें—

पंचेदिया दु सेसा सण्णि असण्णिय तिरिय मणुसा य।
ते होंति इत्थिपुरुषा णपुंसगा चावि वेदेहिं ॥८९॥

टीकाः—इत्थिपुरिसा-स्त्री पुरुषाः णपुंसगा-नपुंसकाश्च वेदेहिं-वेदै वेदेषु वा। पूर्वोक्तानां शेषाः पंचेंद्रियाः संज्ञिनो असंज्ञिनश्च येतिर्यंचो मनुष्यस्ति सर्वेपि स्त्रीपुंनपुंसकास्त्रिभिर्वेदैर्भवंति

पुनर्वेद ग्रहणं द्रव्यवेद प्रतिपादनार्थं भाववेदस्य स्त्री नपुंसक ग्रहणेनैव ग्रहणादिति ॥८९॥

यहां पर वेद शब्दका अर्थ द्रव्यवेदके अर्थमें लिया है। इस पद परसे हम हठाग्रह करेंगे कि, वेदशब्दका अर्थ द्रव्यवेद ही होसकता है तो हमारा वह हठाग्रह दोषी ठहरेगा! क्योंकि शास्त्रमें प्रकरणके अनुसार अर्थ करना पड़ता है इसलिये हठाग्रह करना ठीक नहीं।

कोई कहता है कि यहापर वेद शब्द दुबार आया है इसलिये वेदका अर्थ द्रव्य करना ठीक है उसी तरह दुबार जहापर आया हो तो द्रव्यवेद अर्थ करनेमें हानि नहीं।

समाधानः—भाई इस तरह भी कहना ठीक नहीं है। ऐसा कहोगे तो इत्थिवेद पुरिसवेद ऐसे बहुत जगह में द्विवारमें भी आये हैं। तो भी हम प्रकरणके अनुसार ही अर्थ कर सकते हैं। प्रकरण छोड़कर अर्थ करनेमें हानि है। क्योंकि 'इत्थि, का अर्थ भावस्त्री और वेदका द्रव्यवेद ऐसा होसकता है। तो भी मुख्यतासे प्रकरण के अनुसार ही अर्थ करना ठीक है। वही स्याद्वादी है।

श्री सिद्धांतसार ग्रंथमें 'वधूमढे, शब्द स्त्रीवेद और नपुसक वेदके अर्थमें प्रयोग किया है। इसलिये प्रकरणके अनुसार अर्थ करना चाहिये। अब देखो मूलाचारमें "वेदे-वेदेन वेदस्त्रिविधः स्त्री वेद पुंवेदो नपुंसक वेदश्च स्त्रीलिं पुल्लिंगं नपुंसक लिंग मितियावत्। स्त्यायत्यस्यांगर्भः इतिस्त्री, सूते पुरुगुणा निति पुमान् नस्त्री

न पुमानिति नपुसक स्त्री बुद्धि शब्दयोः प्रवृत्ति निमित्तं स्त्रीलिंग, पुबुद्धि शब्दयोः प्रवृत्ति निमित्तं पुल्लिंग, नपुंसक बुद्धि शब्दयोः प्रवृत्ति निमित्त नपुंसकलिंग तेनलिंगेननपुंसकवेदेन नपुसका नपु-सक लिंगा णायव्वा—ज्ञातव्या: होंति भवंति नियमादु निश्चयात्। सर्वे एकेंद्रिया: सर्वे विकलेंद्रियाः नारका सर्वे संमुर्च्छना: पंचेंद्रिया: सज्ञिनो असंज्ञिनश्चवेदेन नपुसका भवंति इति ज्ञातव्या नात्र संदेह: सर्वज्ञ वचनं इत इति ॥ ८७ ॥

अर्थात्—इस उपरोक्त उद्धरणमें यह स्पष्ट कर दिया है कि, भावलिंग और द्रव्यलिंगमें निमित्त कारणका संबंध माना है। इससे यह मालुम पड़ता है कि अपर्याप्तावस्था में इन दोनों का निमित्त संबंध है इसलिये स्त्री बुद्धि और शब्द इन दोनों की प्रवृत्ति के निमित्त स्त्रीलिंग माना है। उसी तरह दोनों लिंगों का भी कथन किया है। यदि इन भाव और द्रव्यमें निमित्त कारण नहीं मानोगे तो समवेदोंकी व्यवस्था नहीं बैठेगी। सर्वत्र समवेद की प्रसिद्धि है सिर्फ कर्म भूमिके म्लेच्छ को छोड़कर आर्यखण्ड और विदेह में कचित् कहीं पर एकादा विषमता है। उसमें कर्म विपाककी विचित्रता है ऐसा कहा है। उसी अपवाद रूप से होने वाली विषमता को विधि मार्ग समझना बुद्धिमानी नहीं है। और सब जगह (ग्रन्थ भरमें) समवेद का कथन मान कर केवल कचित किसीमें होने वाली अपवाद विधि को प्रधानता देकर विधि मार्गको उड़ाना उचित नहीं है। आप लोग विचार करें। आपका लिखान

किस प्रवाहमें बह रहा है । अपर्याप्तावस्थामें वेद वैषम्यकी मान्यता भी महान दोषोंसे खाली नहीं है । दिगम्बर आम्नाय में कर्म भूमि महिलाओंको आदिम तीन संहननोंका निषेध है । और आप लोग अपर्याप्तावस्था में वज्र वृषभ नाराच संहनन का और स्त्रीवेद का एक साथ उदय मान रहे हैं । फिर द्रव्य स्त्री को वज्रवृषभनाराच संहननका निषेध किस विधि से करोगे ? क्योंकि आप कर्म भूमि में ही स्त्रीवेदके साथ वज्रवृषभनाराच संहननका भी उदय मान रहे हैं । श्री धवलाके आठवें पुस्तक में स्त्रीवेद के साथ वज्र वृषभ संहनन का बध होता नहीं है ऐसा भी माना है । उस पर भी आप विचार करो । स्त्रीवेदके साथ पुरुषाकार शरीर भी नहीं बन सकता है । क्योंकि भाववेदके निमित्तसे द्रव्यवेद भी बनता है । इन दोनोंमें निमित्त कारण माने बिना व्यवस्था ही नहीं बैठेगी तथा कार्य भी गर्भ धारणादि वीर्य विमोचनादि नहीं हो सकेगा । यह भी ध्यानमें रखने की बात है । भाववेद परिवर्तन स्वरूपहैयदि हठाग्रहसे नहीं मानोगे ? तो वेद कर्म का अपकर्षण संक्रमणादि नहीं होगा । इसके विगर कर्म व्यवस्था भी नहीं बैठेगी । इसलिये वेद शब्दका सर्वथा भाववेद ही समझना ठीक नहीं है । द्रव्यवेदका भी अर्थ होता है श्री वसुनन्दि सिद्धांत चक्रवर्ती सरीखे उद्भट विद्वानों की मान्यता विपरीत नहीं होती है । इनके बचनमें दोष मत लगावो ।

❀ इति अष्टम प्रकरणं समाप्तम् ❀

विद्वद्वर आगम रहस्यज्ञ स्व० पं० रामप्रसादजी
शास्त्री बम्बई वालोंका लेख

卐 श्री वर्द्धमान सन्मति जिनेभ्यो नमो नमः 卐

卐 सदाचार श्री वृद्ध शान्तिसागरादि मुनिगणेभ्यो नमो नमः 卐

षट्खण्डागम रहस्योद्घाटन का

विफल प्रयास

आगम पक्षके हामी प० पन्नालालजी सोनी अमोटेने एक 'षट्खण्डागम रहस्योद्घाटन' नामका एक व्यर्थ का स्थूलकाय ट्रैक्ट लिखा है वह ट्रैक्ट आकार प्रकारमें जैसा बाह्यमें सुन्दर दीखता ह वैसा भीतर उससे सर्वथा विपरीत अशोभन है। कारण कि सिद्धांत सूत्र समन्वयके कर्ता न्यायालंकार विद्यावारिधि श्री० पं० मक्खनलालजी शास्त्री ने अपने ट्रैक्टमें जिन मुख्य आगम प्रमाणों और हेतुओं को लेकर जिस सत् पक्षका समर्थन किया है उन हेतुओंके प्रतिवादके कथनका उक्त सोनीजीके ट्रैक्टके हेतुओंने स्पर्श तक भी किया नहीं है। तथा आपके संशयित दृष्टिमें मोटे पं० रामप्रशादके जो मुख्य हेतु हैं उनके खण्डनकी बात तो

वहां बिलकुलही नहीं है। आपने पं०रामप्रसादको जो मोटे रूप विशेषण दिया है वह आपकी दृष्टिमें बुद्धिकृत मोटे के हिसाब से या शरीरके मोटेके हिसाबसे होनेके कारणसे दिया है। वयस्कृत तथा सन्मान दृष्टिके कारण तो वह विशेषण हो नहीं सकता कारण कि गुजराती भाषा के सिवाय उस शब्दका हिन्दीमें वैसा अर्थ है नहीं। अस्तु आपका यह दत्त विशेषण मुझे सादर स्वीकार है। पं० खूबचन्दजी ने भी तो कहीं साधु परमेष्ठीके समक्ष ऐसा कहा था कि रामप्रसाद को सिद्धांतके विषयमें क्या आता है मालुम होता है कि उसी का अनुकरण आपकी लेखनीमे है। साथीका अनुकरण साथीको होताही है कारण कि बेंगनको देखकरके बेंगनको रंग आता ही है।

आपने अपने आद्य वक्तव्यमें जो हरिभद्र श्वेताम्बर विद्वान्का जो यह यह श्लोक दिया है कि—

पक्षपातो न मे वीरे न द्वेष कपिलादिषु
युक्ति मद् वचनं यस्य तस्य कार्यः परिग्रहः ॥

इस श्लोकसे आपने यह स्पष्ट सूचित किया है कि जैसे कपिलादिक सर्वज्ञ नहीं थे वैसे ही श्री वीरनाथ भी सर्वज्ञ नहीं थे—

कुल परंपरासे मै वीरका उपासक हूँ इसलिये उनके बारे में मेरे पक्षपात नहीं है और कुल परंपरासे कपिलादिकका मैं उपासक नहीं हूँ फिर भी मेरे उनके विषयमे द्वेष नहीं है। इन दोनों असर्वज्ञोंके वचनोंमें जो युक्ति मद् हैं वे मेरे ग्राह्य हैं।

आपके द्वारा इस श्लोकके अनुकरणसे—साम्यवाद की स्पष्ट

गंध सूचित होती है। आप अपने निष्पक्षता के मोहमें इतने मो-हित होगये हैं कि ऐसे वाक्य मुझे किधर ले जा रहे हैं इस बात का आपको जरा भी ध्यान नहीं रहा है। आज कल के सुधारक भी तो इसी मंतव्य को लिये सुधारक कहे जा रहे हैं। अस्तु यह एक आपके आगमपक्ष का खास विशुद्ध नमूना है।

अच्छा तो यह था कि सोनीजी अपनी निष्पक्षता समर्थन करनेके लिये हरिभद्र श्वेताम्बर विद्वान् का वह उपर्युक्त श्लोक न लेकर उसकी जगह—स्वय कवित्व सम्बन्धि बुद्धि खर्च करके—

पक्षपातो न मे भावे न द्वेषो द्रव्य दृष्टिषु-
युक्ति सत्वं च यत्रास्ते तत्र कार्यःपरिग्रहः॥

ऐसा श्लोक काम में लाते।

अस्तु—यह अदूरदर्शिता और कवित्व बुद्धि के अभाव का परिणाम है जो कि आपको अपदमें पटक रहा है।

आपने प्रथम ही अपने ही 'षट् खंडागम रहस्योद्घाटन' नामक ट्रेक्टमें जो 'संजदशब्द नं० ९३ वें सूत्रमें नहीं होना चाहिये-इस संबधके लोगोंके जो १७ मुद्दे रक्खे है' वे १७ मुद्दे न तो परस्पर विरोधी हैं न वे केवल प्रतिज्ञा वाक्य हैं न उनमें स्वकल्पित कोई शब्द जाल है और न मूल भूत आगमका उनमें किसी भी तरह का अभाव है। है भी तो वह सिर्फ

आपकी पश्यतोहरी कलमकी चातुरीका प्रभाव है जो कि प्रकरण गत वस्तु तत्व को न बतलाकर बड़े स्थूल वागाडंबर में

लपेटकर अपथ मार्गको भावित कर रहा है। अर्थात् श्रीमान् पं० मक्खनलालजी शास्त्रीके—'सिद्धांत सूत्र समन्वय' गत सत्यसमन्वित तत्वको न बतलाकर विपरीत तत्वको दृष्टिगोचर कर रहा है। वह सबसे प्रथम तो यह है कि—

पं० मक्खनलालजीने अपने ट्रैक्टमें कहीं भी ऐसा नहीं लिखा है कि—गति नाम कर्मके उदयसे वा जाति आदि नाम कर्मके उदय से—औदारिकादि शरीर होते हैं। उनने सिर्फ ऐसा अवश्य लिखा है कि—'नारकी तिर्यंच मनुष्य देव-इन चारों में शरीर पर्यायों का समावेश है।

यहां पर उनने यह बात स्पष्ट दिखलाई है कि—देव और नारकियोंमें-वैक्रियिक शरीर पर्याय है-तथा मनुष्य और तिर्यंचों में औदारिक शरीर पर्याय है। तथा विग्र गतिमें बीज भूत वह कर्मोदय है जो कि उन चारों अवस्थाओंको प्राप्त कराता है। पं० मक्खनलालजी के इस उपर्युक्त कथन से यह बात तो कतई ही नहीं निकलती है—'य नारक तिर्यंच मनुष्य देव ये चार शरीर पर्यायें हैं' न मालूम सोनीजी ने पं० मक्खनलालजीके सरल और स्पष्टतासे कहे गये उपर्युक्त वाक्यका वैसा उलटा अर्थ कैसे समझ लिया है? अथवा जान बूझकर अपनी पश्यतोहरी चातुरी का नमूना दिखाया है। वास्तविक बात यह है कि—शरीर के बिना किसी भी हालतमें संसारी जीव न रहा है और न रह सक्ता है इसीलिये संसारी जीवोंमें शरीरकी कीही मुख्यता है और वह ही जीव

का बन्धन है तथा उसीके निमित्तसे संसारी जीव नय विवक्षा से 'मूर्त' कहा जाता है। यह सर्व द्रव्य शरीरका ही तो माहात्म्य है। पाचों शरीरोमें कोई भी शरीर क्यों न हो है तो आखिर पुद्गल प्रचय ही। ऐसे मूल भूत आधारके बिना विचारे ससारी जीव की जगतमें स्थिति भी कैसे बन सकती है तथा उसकी सत्ता भी कैसे कायम रह सकती है।

आपने अपने ट्रैक्टको विवक्षा और अविवक्षाका पचड़ा लगा कर जो यह सूचित किया है कि-षट् खण्डागम गत सिद्धांत शास्त्र के भेद जीवट्ठाण खुद्दाबन्ध बन्धस्वामित्व विचय-कषाय पाहुड़ आदि में कथन भाव विवक्षासे ही बतलाया है मै थोड़ी देर के लिये-द्रव्य प्रकरण गौण करके आपके कथनको ही थोड़ी देरके लिये मान्यकर आपसे यह पूछता हूं कि—इस विवादस्थ प्रकरण में जो आपने वैक्रियिक शरीर धारिणी देवांगना को भावस्त्री से ग्रहण किया है परंतु औदारिक शरीर धारिणी द्रव्यसे और भाव से जो स्त्री है वह भावस्त्री क्यों नहीं ली, क्या उसका कहीं षट् खण्डागम में निषेध है क्योंकि वेद साम्यकी अपेक्षासे उसका पहला दर्जा है। दूसरे वेद वैषम्य षट् खण्डागममें है भी कहां। और जब भाव की ही प्रधानता इस ग्रन्थमे है तो द्रव्यस्त्रीका भी जो भाव होगा वह ही यहां प्रधान होगा जैसा कि आपने अपने ट्रैक्टके पत्र १ की पंक्ति ६ से लेकर 'कहीं द्रव्यवेद भाववेद समान मिल जाते हैं इत्यादि' यहां द्रव्यवेद भाववेद समान मिल गये-परंतु औदारिक

शरीर धारिणी स्त्रीके न मिले यह क्यों जब कि उसके भी तो मुख्य-ता कर स्त्रीवेदका उदय होता है। उस कथन से तो आपने इस ग्रथमें भावकी ही प्रधानता मान करके स्पष्ट-द्रव्यस्त्री को विधान कर दिया।

यह अपना अपराध दूसरोंके माथे माडनेकी चतुराई आपने कबसे सीख ली। धन्य है इस चतुराईको ?

दूसरे इस ग्रन्थमें आप सम्मत भावकी प्रधानतासे ही कथन है तो भाववेदका जहां जहां उदय है वहां वहां के वे भाववेद सभी-क्यों न लिये जायेगे—ऐसी दशामें नपुसक मनुष्य शरीर धारी है उसके भी जो भाव होंगे वे भी सभी लिये जायेगे तथा स्त्री मनुष्य शरीर धारीके भी लिये जांयगे। ऐसी दशा मे सभीके भाव वेद नौवें गुणस्थान जांयगे। क्योंकि षट् खडागम मे- सभी वेदों को नौवें गुणस्थान तक जाते लिखा है। उसकी विभिन्न कथनीके लिये षट् खण्डागममें कोई भी ऐसा सूत्र नहीं है कि—द्रव्यमे पुरुष जातिके मनुष्य के ही तीनों भाव नौवें गुणस्थान तक जा सकते हैं। यदि षट् खंडागममें ऐसे विधानका कोई सूत्र हो तो अवश्य बतलाना चाहिये—जब ऐसी विभिन्नता दिखलाने वाला षट् खडा-गममे कोई भी सूत्र नहीं है तो स्पष्टतया सिद्ध है कि इस प्राचीन शास्त्रमें आपके मतसे-वेद वैषम्य न होकर. वेद साम्य है जैसा कि देव देवांगनाओंमे है। ऐसी दशामें यह ग्रंथ-और सभी स्थलों में चाहे भावके कथनका हो चाहे द्रव्यके कथनका हो दोनों विषयों

के कथनसे सिद्धांतमें कहीं भी दोष नहीं आता है। यदि एक दोष आता है तो वेदके विषयमें ही आता है। ऐसी हालतमें वेद विषयक निर्णयके साथ जब तक गुणस्थान संख्याके निर्णयका इस ग्रन्थ मे स्पष्ट वर्णन न होगा तब तक यह कभी भी नहीं कहा जायगा कि इस ग्रन्थ यापनीय संघ का न हो कर के दिगम्बर संघका है।

यदि सिद्धांत् ग्रथोंमें केवल भावकी ही प्रधानता मुख्य मानी जाती और भाव ही सर्व कर्ता विधाता होता तो श्री अकलंकदेव अपनी राजवार्तिक में पांच गुणस्थानोंके विधानमे द्रव्य स्त्री गत द्रव्यकी ही क्यों प्रधानता मानते। क्योंकि उनने स्पष्ट लिखा है कि—'द्रव्यलिंगापेक्षेण पन्चाद्यानि' (राजवार्तिक मुद्रित पत्र ३११ पंक्ति ९) यदि प्राचीन ग्रन्थ षट् खंडागममें-यह बात न होती तो अकलंकदेव भी ऐसा विधान कहां से लाते। श्री अकलकदेवने ३११ के पेज में—चौदह मार्गणाओंमे चौदह गुणस्थानोंको जहां उदय सत्ताको लिये हैं तहां तैसा वर्णन किया है। प्रथम गति मार्गणा मे उनने मनुष्य गतिके भाववेद के साथ द्रव्यवेद का भी मनुष्य गति में वर्णन किया है। यदि गति मार्गणामें सर्वथा भाव का ही-वर्णन होता तो अकलंकदेव-द्रव्यका भी क्यों वर्णन करते तथा श्री वीरसेन स्वामीने भी—प्रथम पुस्तकके १३५ पत्रमें—

भवाद्भवसंक्रान्तिर्वागतिः। सिद्ध गतिस्तद्विपर्ययात्।

यहां भव शब्दका अर्थ-शरीर है। क्योंकि सिद्ध अवस्था में

पूर्व शरीरके छोड़नेसे दूसरा शरीर प्राप्त नहीं होता है। गाथा में भी–जीवा हु चाउरंग गच्छन्ति नियगई होई-यहां-चार गतिके-चार शरीरोंसे प्रयोजन स्पष्ट है। पूज्य श्री अकलंकदेवने तथा वीरसेनने जब कि इस मार्गणामें द्रव्यवेदका वर्णन किया है तो यह सोनीजी का कहना है कि इस मार्गणामें द्रव्यवेदका कुछ भी सम्बन्ध नहीं है-यह कहना सिर्फ आचार्य कथन के विरुद्ध होने से-आगमपक्ष अनुयायी सिद्ध नहीं करता किन्तु केवल हठ धर्मसे एकांत भावपक्ष को ही सिद्ध करता है जो कि आपके प्रतिज्ञामात्र कथनके सर्वथा विरुद्ध है। इसी तरह इंद्रिय मार्गणा में श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्तीने गोम्मटसार जीवकांडमें—

मदि आवरण खओवसमुत्थविसुद्धी हु तज्ज बोहो वा।
भाविन्दियतु–दव्वं देहुदयज देह चिण्हं तु ॥ १६४ ॥ गाथा
फास रसगंधरूवे सद्दे णाणं च चिण्हयं जेसिं।
इगबितिचदुपंचिंदिय जीवा णिय भेय भिण्णाओ ॥१६५॥

इंद्रि मार्गणाकी इन दो गाथाओंमें-द्रव्येंद्रिय और भावेंद्रिय दोनों को स्पष्ट रूपसे लिया है। १६५ की गाथामें तो स्पष्ट कर दिया है कि–जिनके ज्ञान और चिन्ह ये दोनों है वे एकेंद्रियादि जीव है और अपने २ भेदसे भिन्न हैं–अर्थात् जिनके स्पर्शका ज्ञान और द्रव्यरूप स्पर्शन इन्द्रिय है वे एकेद्रिय है–इसी तरह द्वि इंद्रियादि जीवोंमें भेद है। इस कथनसे भी सोनीजीकी यह बात नहीं ठहरती कि इन्द्रि मार्गणा भावकी ही अपेक्षा रखती है।

इसी इन्द्रिय मार्गणाकी—

चक्खू सोद घाणं जिब्भायारं मसूर जवणा ती ।
अति मुत्त खुरप्पसमं फासं तु अणेयसंठाण ॥ १७० ॥

इस गाथामें इन्द्रियोंके जो आकार बतलाये हैं वे सर्व द्रव्येंद्रिय की अपेक्षासे ही कहे हैं फिर कैसे कहा जाय कि–इंद्रिय मार्गणा सिर्फ भावकी ही अपेक्षा रखती है।

धवलाके १३५ पत्रमें भी यही बात है—द्रव्येंद्रिय निबंधनादि-याणीति यावत्- भावेंद्रिय कार्यत्वाद् द्रव्येंद्रिय व्यपदेशः नेयमदृष्ट-परिकल्पना कार्यकारणो चास्य जगति सु प्रसिद्धस्योपलंभात् ।

जो बात गोम्मटसारमें है वह ही इन्द्रियमार्गणामें द्रव्येंद्रियके ग्रहण की बात स्पष्ट ही है ।

जगति सुप्रसिद्धस्योपलभात् के आगे इन्द्रिय वैकल्य आदि पाठमें 'इन्द्रिय वैकल्य' और 'आलोकाद्यभाव' ये दो पद तो स्पष्ट ही इन्द्रिय मार्गणामें द्रव्येंद्रियके सूचक हैं। जब ऐसी व्यवस्था उपर्युक्त दोनो ग्रन्थोके प्रमाणसे सिद्ध है फिर यह नहीं माना जाता कि यह मार्गणा भाव इन्द्रिय विषयक ही है।

—काय मार्गणा—

धवला पत्र १३८ प्र० पुस्तक चीयते इति कायः नेष्टकादि चयेन व्यभिचारः पृथिव्यादि कर्मभिरिति विशेषणात् । औदारिका-दि कर्मभिः पुद्गल विकाभिश्चीयत इति चेन्न । पृथिव्यादि कर्मणां सहकारिणामभावे तच्चयनानुपपत्तेः ।

अथवा - आत्मप्रवृत्युपचित पुद्गल पिंडः कायः ॥

गाथा यथा—

अप्पप्पवुत्ति संचिद पोग्गल पिंडं वियाण कायोत्ति ॥८६॥

जहभार वहो पुरिसो ....

एमेवबहइ जीवो कम्मभरं काय कायोत्ति ॥ धवला-८७ ॥

गोम्मटसार जीवकाण्ड गाथा यही नं० २०१ ।

गाम्मटसार—मसु बु बिंदुसुई कलावधय सन्निहो हवे देहो ।

पुढवी आदि... ....   नं० २०० ।

जाई अविणभावी तस थावर उदय जो हवे काओ ।

सो जिणमदह्मि भणिओ पुढवीकायादि छह भेओ ॥१८०॥

पुढवी आऊ ....कम्मोदयेण तत्थेवणियवण चउकजुदो

ताणं देहो हवे णियमा ॥१८१॥

बादर सुहमोदयेण बादर सुहमा हवंति तद्देहा ॥१८२॥

—कायमार्गणामें सिद्धोंका स्वरूप—

जह कञ्चण मग्गिगयं.........

तह काय बंध मुक्का.........   २०२

—योग मार्गणा—

गाम्मटसार—अंगोवंगुदयादो दव्वमणट्ठं जिणिंद चंदह्मि

मणवग्गण खंधाण आगमणादो मण जोगो ॥२२८॥

पुरुरुदारुदालं एयट्ठो संविजाण तम्मिभव ॥२२९॥

इसी योगमार्गणामें अपर्याप्ति पर्याप्ति विषयक विशेष प्रकाश-

ओरालिय उत्तत्थं वियाण मिस्सं तु अपरि पुण्णं तु ॥२३०॥

इसका पं० खूबचन्दजी अर्थ इसप्रकार लिखते हैं—

जिस औदारिक शरीरका स्वरूप पहले कह चुके हैं। वही शरीर जब तक पूर्ण नहीं होता तब तक मिश्र कहलाता है। भावार्थ—शरीर पर्याप्तिसे पूर्व कार्माण शरीरकी सहायतासे होनेवाले औदारिक काययोगको औदारिक मिश्र काययोग कहते हैं।

(आदिके चार शरीर नोकर्म शरीर हैं)

आपने अपने ट्रैक्टमें योगको शुद्ध क्षायोपशमिक भाव कहा है। परंतु योग तो क्षयभावमें भी है। परंतु जिसतरहसे अयोगि जिन तथा सिद्धोंमें क्षयभाव है परंतु वहां योग नहीं है कारण कि वहांपर मन वचन काय सबन्धी त्रिविध वर्गणाका अवलम्बन होनेसे योग नहीं। परंतु सयोगीमें कायवर्गणाका अवलम्बन होनेसे वहां योग है; इसी तरह क्षायोपशमिक भावमें भी यद्यपि अंतरंग क्षयोपशमयोग है परंतु वह त्रिवर्गणाके निमित्तसे ही है त्रिवर्गणाके अवलम्बन के बिना वह योग ही सिद्ध नहीं होता जैसे कि अयोगी और सिद्धोंके ऐसी अवस्थामें स्पष्ट सिद्ध है कि योगमें मुख्यकारण त्रिवर्गणाका अवलंबन ही है कोरा क्षयोपशमिक आश्रवका कारण न होनेसे वह योग भी नहीं सिद्धांतमें जो आश्रवका कारण है वह ही तो योग है—क्योंकि 'जोगा पयडिपदेशा' तथा 'कायवाङ् मनः कर्मयोगः, स आश्रवः, एसे सिद्धांत वाक्य हैं। आपके माने हुए उस क्षयोपशमयोगमें जब योगका कार्य आश्रव ही नहीं तो फिर वह योग के भी कहलाने लायक क्यों?।

श्री राजवार्तिक मुद्रित पत्र २४६ पंक्ति १३ इस विषयका स्पष्टकरण—यदि क्षयोपशम लब्धि अभ्यंतर हेतुः क्षये कथ ? क्षयेपि सयोगकेवलिनः त्रिविधो योग इष्यते। अथ क्षय निमित्तोऽपि योगः कल्प्यते अयोग केवलिनां सिद्धानां च योग प्राप्नोति। नैष दोषः क्रियापरिणामिनः आत्मनस्त्रिविधवर्गणावलम्बनापेक्षः प्रदेश परिस्पन्दः। सयोगकेवलिनो योग विधिर्विधते तदालम्बना भावात् उत्तरेषां योगविधिर्नास्ति।

इस श्री राजवार्तिकके कथनसे स्पष्ट होजाता है कि योगमें कार्य परत्वहेतु की मुख्यतासे द्रव्यकी ही मुख्यता है।

श्री धवलामें भी मुख्यता करके यही बात कही गई है, युज्यत इति योगः। न युज्यमान घट पटादिन व्यभिचारः तस्यानात्म-धर्मत्वात्। न कषायेण व्यभिचार तस्य कर्मादान हेतुत्वाभावात्। अथवात्मप्रवृत्तेः कर्मदान निबन्धन वीर्योत्पादो योगः। अथवात्म प्रदेशानां संकोचावकोचो योगः

उक्तं च—

मणसा वचसा कायेण चापि जुत्तस्स विरियपरिणामो।
जीवस्सप्पणियो अं जोगोत्ति जिणेहि णिद्दिट्ठो ॥८८॥

उपर्युक्त इन आदि अनेक सिद्धात ग्रथोंके पठन मननसे स्पष्ट होजाता है कि इन चारि पूर्व मार्गणाओंका द्रव्य प्राधान्यसे कथन है क्योंकि द्रव्यस्थितिके बिना ये स्वकार्य संपादनमें स्वय असमर्थ हैं। इसलिये यहांपर द्रव्यका ही प्राधान्य हैं। और आगे की मार्गणा-

यें हैं उनमें भावका प्राधान्य है परंतु वहां भी द्रव्यके बिना कार्य कारित्व घटित नहीं होता है।

वेदमार्गणामे ही यदि वेद चारित्र मोहनी उपशम या क्षयको प्राप्त होजाय तो द्रव्यवेद भी क्या सहायता कर सकता है। हा वह (भाववेद) उपशम या क्षयको प्राप्त न होगा तो द्रव्यवेद अवश्य ही उसकी उत्कटता या अनुत्कटता को लिये सहायक होगा। यहां भी भाववेद द्रव्यवेदसे निर्पेक्ष है यह तो नहीं है। यदि भाव वेद सर्वथा निर्पेक्ष ही होय तो द्रव्य चिह्न को वेद ही क्यों कहा जाय।

एकेंद्रियोंके सोनीजीने जो द्रव्य नहीं बतलाया है वह केवल धवला की 'एकेंद्रियाणां न द्रव्यवेद उपलभ्यते तदनुपलब्धौकथं तस्य तत्र सत्वमिति चेत्? माभूत्तत्र द्रव्यवेदस्तस्यात्र प्राधान्या भावात्' इतनी पंक्ति लिखकर लिख दिया है कि एकेंद्रियोंके द्रव्यवेद ही नहीं है परंतु 'अथ[illegible]नानुपलभ्या तदभाव: सिद्धयेत्, सकल प्रमेयव्याप्युपलम्भवलेन तत्सिद्धि:। न स छद्मस्थेष्वस्ति।

ये पंक्तियां एकेंद्रियोंके द्रव्यवेद सिद्धि की विधायक हैं वे नही लिखी हैं। यह कृति आपकी पश्यतोहरी न कही जाय तो क्या कही जाय?

सोनीजीने अपने ट्रैक्टके ३४वें पेजकी 'इन सबके द्रव्यशरीर तो होता है परंतु द्रव्यवेद इनके नहीं होता, इस आठवीं नवमी पंक्तिको लिखा है। वह सत्वप्ररूपणा की प्रथम पुस्तकके १०३

सूत्र की उपर्युक्त अधूरी धवला टीकाके आधारसे लिखा है। क्योकि- अथवा नानुपलभ्या तद्भाव सिद्ध्येत् इत्यादि जो उपर्युक्त पंक्ति हैं उन्हे लिख देते तो एकेंद्रियोंके द्रव्यवेद सिद्ध होजाता। परन्तु वह उनको अभीष्ट नहीं था कारण कि भाववेदकी प्रधानता दिखाने की धुनिमें उन्हें यह सिद्ध करना था कि द्रव्यवेदके नहीं होनेपर भी एकेंद्रियोंके भाववेद होता है।

सभी मार्गणाये भावमार्गणायें नहीं है।

सोनीजी ने 'सभी मार्गणाये भावमार्गणाऐं है' ऐसा अपने ट्रैक्ट के ४८ पेजमें देकरके पेज ६९ तक किया वह कथन सभी कथन भावकी धुनिमें सवार होकर कर्मोदयकी एकांत धुनिसे कर डाला है यह सभी कथन इनका सिद्धांत ग्रंथोंके प्रकाशमें विशृ-ङ्खलित है। गति विषयक चार गतियोंकी चार गाथा गोम्मटसार की उनने दी हैं। उसमें एक देवगतिकी भी गाथा है उसका तीसरा चरण 'भासंतदिव्वकाया' ऐसा तीसरा चरण है इसमे ही वह बात केवल भावकी सोनीजी की खंडित होजाती। सभी मा-र्गणाओंमें सोनीजीका प्रतिपाद्य विषय प्राय खंडित है यह मै पूर्व इसी लेखमें आगम प्रमाण और युक्तिसे लिख चुका हूँ। उसको पुनः पुनः दुहराना केवल लेखका कलेवर ही बढ़ाना है अतः इस विषयमे ज्यादा लिखना व्यर्थ है। निष्पक्ष विद्वान थोड़ेसे संकेत मात्र से ही सब असली रहस्य समझ जाते हैं।

—::-०-::—